व्यक्तित्व एवं कृतित्व

देवी नागरानी

अनुक्रमणिका

(लेख पर जाने के लिए शीर्षक पर क्लिक करें)

1

लेख-

साहित्य जगत में बच्चन जी की दस्तावेज़ी हैसियत

-देवी नागरानी

हिन्दी जगत में (1907) मस्ती और अलहड़ पन के गीत गाने वाले कवि हरिवंशराय बच्चन का परिचय उमर खय्याम की रुबाइयों के अनुवाद से हुआ। यह अनुवाद शब्दों का समूह न होकर हृदय रस से ओत प्रोत रहा और रहता आया है। इय कालजयी कृति ने उनके लिये स्वर्ण द्वार खोल दिये इसमें दो राय नहीं!!

अपने आरंभिक कवि-जीवन में बच्चन जी ही एक मात्र हालावादी कवि रहे, या यूं कहें कि हालावाद के प्रवर्तक माने जाते हैं। हालावादी काल में (1933-1936) उनकी तीन पुस्तकें मधुशाला (1933), मधुबाला (1936), और मधुकश (1937) प्रकाशित हुईं जिनमें उमर खय्याम की गहरी छाप रही हैं। इनका प्रकाशन एक वर्ष के अन्तराल से हुआ। इन में बच्चन ने यौवन सौंदर्य और मस्ती के मादक गीत गाए थे, एवज़ काफ़ी समय तक किशोरों और युवकों में अत्यंत लोकप्रिय रहे उस समय और बाद में भी मधुशाला की शैली उन्होंने उमर खय्याम से ली, जिसका उन्होंने इकरार भी किया है - कवि मंदिरा के मादक उन्माद में अपने जीवन के संपूर्ण खालीपन और हर अभाव को दूर करना या भूल जाना चाहते थे।

मधुशाला उनकी दूसरी कृति रही जिसकी भूमिका में वे स्पश्ट करते हुए लिखते हैं - ‘‘आह, जीवन की मदिरा जो हमें विवश होकर पीनी पड़ी है, कितनी कड़वी है! कितनी कड़वी ! यह मदिरा उस मदिरा के नशे को उतार देगी, जीवन की दुख-दायिनी चेतना को विस्मृति के गर्त में गिरायेगी तथा प्रबल दैव, दुर्दम काल, निर्मम कर्म, और निर्दय नियति के क्रूर, कठोर, कटिल आघातों से रक्षा करेगी” कहने का तात्पर्य यही है कि यह एक महाशौधि है जिसका पान करने से भय के उन्माद से आदमी अपने आप को, अपने दुखको, अपने दुखद समय को और समय के कठिन चक्र को भूल जाता है।

तीन चार सालों के लघु समय के उपरांत बच्चन जी ने काफ़ी समय तक निषा निमंत्रण, एकांत संगीत, आकुल अंतर, मिलन यामिनी, आदि काव्य संग्रहों के गीतों और कविताओं में यौवन और प्रेम के गीतों को ज़बान दी। उनके रचनात्मक फ़लक के विस्तार में समोहित हैं कहानियां, रेखाचित्र, लोकगीत, गीत, निबंध, स्मरण और उनकी आत्मकथा जो चार खंडों में मंजरे-आम पर है!

1 क्या भूलूँ क्या याद रखू / 2 नीड़ का निर्माण / 3 बसेरे से दूर /4 दश्द्वार से सोपान तक

इन खंडों में उन्होंने अपना आत्म चित्रण दर्शाया है कौन सा खंड किससे बहतर है यह कहना दुष्कर है। पाठक आत्मकथा के भीतर एक और आत्मकथा पढ़ जाता है, जहां बच्चन जी संक्षेप में सारे विवरण दोहरा जाते है। विषय वस्तू को कुछ यूं वर्णन करते हैं कि अनुभूति बिम्ब बन जाती है। उनकी आत्मकथा के बिंब यह स्पष्ट करते हैं कि गध्य की अपनी एक गति होती है और वही उसके संवादों, ध्वनि और भाषा को संक्षिप्त, केंद्रित और संगठित करती है।

यह तो तय है कि उनकी कविता सामाजिक चेतना का प्रमाण है, उन्होंने सिर्फ़ उसे लिखा नहीं, बल्कि जिया है। उन्होंने आत्मकथा में भी अपनी जीवनी ही नहीं समाज व प्राचीन काल के इतिहास की भी रेखांकित किया है।

सहित्य वही सार्थक है जो सच कहे, सच दरशाए। बच्चन जी जागरण के कवि हैं। 'पल भर जीवन परिचय मेरा' के कवि शब्दों में जीवन के सत्य को परिभाषित करते रहे, और इस बात को मानना पड़ेगा कि हिन्दी काव्य को उन्होंने समृध्द किया, वर्ना वह निधर्न रह जाता इन्हीं खंडो के माध्यम से हम उनके जीवन के, काव्य के और उनकी भाषा शैली के अनेक दृष्टि-कोणों से रूबरू होते हैं। खासकर यहाँ उनके बिंबो का ज़िक्र करना अनिवार्य है।

क्या भूलू क्या याद रखू से एक चित्र:- "आधी रात के बाद एक ऐसी घड़ी आती है जब तारों की पलको पर भी खुमारी छा जाती है। सदा चलने वाली हवा एकदम थम जाती है, न एक डाली हिलती है न पत्ता, न एक तिनका डोलता है न एक तिनका खिसकता।"

एक अद्भूत शब्द चित्र जो कल्पना और अनुभवों के आधार पर निर्मित हुआ हैः शायद बिंब में सोई हुई समृतियों से जगाने की शक्ति अनुभूति में होती है। भाषा का सौंदर्य, लयात्मकता, और संपूर्णता, देखते बनती है!   एक और चित्र मन में उथल पुथल व्यक्त करता हुआ सजीव सामने है - ''लगता है जैसे डूबते हुए दो व्यक्ति; एक दूसरे को तिनके की तरह पकड़ने का प्रयत्न कर रहे हों।" अलंकृत उपमा का सुन्दर प्रयोग हुआ है। खीचां हुआ बिंब नज़रों के सामने सजीव बनकर रक्स करता है।

मानवीय स्पर्श का लोकशील अनुशासन इन चित्रों को सभ्य, संस्कृति से उभारता है जो मानसिकता पर अपनी छाप छोड़ देता है। "जैसे ही उसने मुझे अपनी गोद में लिया, उसकी छाती छहराई और उसने बारह दिन मुझे अपना दूध पिलाया" (क्या भूलूं क्या याद रखूं से) यहां बिंब सिर्फ बिंब ही नहीं एक मानवीय चित्रण है जहां गूढ बातें शब्दों में उभर आती हैं।

इसी खंड में राधा और महारानी द्वारा दुख सुख सुनाने की घटना है जो रोने के स्वर और लय में बांधकर कविवर ने अपनी जीवन यात्रा का सारा दुख इसी में उंडेल दिया है -

"न आंसू की लड़ी टूटती है और न बात की कड़ी". अपनी बात को संक्षेप में पर गहराई की घरातल पर स्थापित करना बच्चन जी की ख़ासियत रही। कई ऐसे चित्रों की उपस्थिति दर्ज है जहां शब्द मात खा जाते हैं और मौन मुखरित होकर बोलता है।

बच्चन जी का मानना है कि कवि समाज का पथ प्रदर्शक होता है बड़ा कलाकार वही है जो अपनी कला पर हावी हो जाए। बिंबों की कतार में एक चित्र नीड़ के निमार्ण से - श्यामा की मृत्यू के मंजर को सामने रखते हुए वे वर्णन

करते हैं और मैं वही अभिव्यक्ति दोहरा रही हूँ- ‘‘केवल मैं पथराई-पथराई आंखों से श्यामा के शव को देखता बैठा रहा, न मेरे मुंह से आह निकली, न मेरी आँखों से आंसू गिरे - मुझे अक्षर-अक्षर में रोना जो था।“

शब्दों में सरल, सहज और स्वभाविक सच सामने रखते जहां शब्द सजीव हो उठते हैं, मन को छूते है, गुदगुदाते है, वहीं आँखों को नम भी करते हैं- पर लयात्मक गति से !!

बच्चन के भीतर एक नन्हा बालक भी बैठा है, जो कभी इस डाल तो कभी उस डाल बैठता है, फुदकता है, उड़ने का प्रयास करता है, और कह उठता है - "‘टहनी पर बैठी गौरैया, चहक चहक कर कहती हैं, भैया नहीं कड़कते बादल काही, मेरा भी अस्तित्व यहाँ है।“

बच्चन जी की रचना में एक ऐसी सम्बध्दिता निरंतरता और विकासशीलता मिलती है जो अत्यंत दुलर्भ है। उनकी रचनाएं मुसलसल पढ़ते हुए इस बात का आभास होता है जैसे एक के बाद एक बाब खुल रहा हो। स्वयं उनका कहना है- “मैं अपनी रचना के सहारे आगे बढ़ता हूँ। जब मैं अपने आपको अभिव्यक्त कर लेता हूं तब जैसे कुछ दूर तक मेरे लिये रास्ता खुल जाता हें **“जीवन पतझर आने से / जीवन का अंत नहीं होता”**

और आगे कुछ और लिखने के पहले सोच ठिठकती हैं, लगता है दो पक्तिंयों के बीच बच्चन जी अपने जीवन की बात तो नहीं लिख रहे हैं? कालपयी कृतियों के रचयिता अहसास की भट्टी में तपते अनुभवों को कविता के रुप में कागज़ पर उतारने में माहिर रहने के बावजूद भी खुद को ज़िन्दगी से जुड़ा हुआ आदमी पाते हैं और यही उनका प्रयास भी रहा कि जिन्दगी में धसंकर

ज़िन्दगी की परिभाशा काव्य में करे। उनके शब्दों से उभरती हुई वेदना आप बीती की पगडंडी से गुज़रकर जग बीती की राह पर आते आते कह उठती है -

जीवन में जो कुछ बचता है / उसका भी है कुछ आकर्षण

बच्चन जी के संपूर्ण काव्य की विशेषता यही है कि वे कहीं भी एक स्तर के नीचे नहीं जाते - भाषा और कथ्य में कहीं विक्षेप नहीं पड़ता। और इसी सिलसिले में अधिकांश कवियों ने वाक्य विन्यास को लेकर उन्हें अपना आदर्श माना है।

"हाय नियति की विषम लेखनी, मस्तक पर यह खोद गई

दूर रहेगी मधु की धारा, पास रहेगी मधुशाला"

जीवन के एक नये बाब को पलटते हुए वे मधुशाला की प्रबलता के आगे मनुष्य की दुबर्लता को रेखांकित करते हुए कहते हैं -

"क्षीण क्षुद्र, क्षण भंगुर, दुर्बल मानव मिट्टी का प्याला

भरी हुई है जिसके अंदर, कटु मधु जीवन की हाला

मृत्यू बनी है निदर्य साकी, अपने शत-शत कर फैला

काल प्रबल है पीने वाला, संसृति है यह मधुशाला"

न आह न आंसू, अक्षर-अक्षर रोना ही नियति का वरदान था। श्यामा का चला जाना, नियति की सत्ता को स्वीकरना था और उसी दर्द की आस से उपजी ये कालजयी कविताएँ आज भी अपनी अमिट छाप छोड़ रही हैं। यक़ीनन यह एक धरोहर है आनेवाले समाज की, मानवता की, साहित्य और सभ्यता की जो फिर भी तृप्ति में अतृप्ति लिये हुए है -

जिन्दगी भर मैं क़लम घिसता रहा / नाड़ मेरी थी कटी तलवार से

उनकी रचनात्मक कविताओं के संसार से जुड़ने का मेरा प्रयास भी कह उठता है -

"रक्त से लिखता रहा वो धार से / जो सिपाही बच न पाया वार से"

 देवी नागरानी

--

मुखपृष्ठ

2

(संस्मरण)

जीवन संबंधी घटनाओं का ऐतिहासिक उल्लेख -बलशौरि रेड्डी

--देवी नागरानी

यादों के गलियारे से गुज़रते हुए मन परिंदा जब अंधेरे में रोशनी पाने के लिए टटोलता है तो किसी एक खास स्थान का स्मरण करता है और उस गलियारे की भूल भुलैया में एक सुरंग सी बनाता चला जाता है, जहां पर अंधेरे का अंत होता है, और रोशनी का आगाज़।

श्री-बलशौरि रेड्डी तेलुगू और हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार, 'चंदमामा' के पूर्व संपादक और बालसाहित्यकार जैसे पारसमणि महापुरुष से मिलने का सौभाग्य मुझे न्यू यार्क में मिला, जहां उनके साथ तीन दिनों के परस्पर मुलाक़ात एक सुखद यादगार बन कर रह गई। यह मेरे

लिए कठिन ज़रूर है कि श्री बलशौरी रेड्डी जैसे विराट व्यक्तित्व पर कुछ कहूँ, और लिखना तो मेरे सामर्थ्य के बाहर है। पर साथ गुज़ारे हुए पल जब यादों में उमड़ते हैं तो मनोभावों को अभिव्यक्त करने के सिलसिले में संचार आ ही जाता है।

जुलाई, १३, १४, १५ 2007 - न्यू यार्क : ८वें विश्व हिंदी सम्मेलन के शिखर पर UNO में एक सुन्हरा दरवाज़ा भारतवासियों के लिये खुला, उसका गवाह इतिहास है. यहाँ गाँधी जी का कथन सत्य बनकर सामने आया "अपने दरवाज़े खुले रखो, विकास अंदर आएगा" । न्यू यॉर्क की सरज़मीं ने मुझे श्री बालशौरि रेड्डी जी के साथ मुलाक़ात का अवसर प्रदान किया, और उस रौशन याद के जुगनू मेरे ज़हन में उजाले भरने लगे।

तीन दिवस के उस साहित्यिक महायज्ञ में पहले दिन खाने के समय डायनिंग हाल में श्री बलशौरि रेड्डी जी से मेरी पहली मुलाक़ात हुई, जहाँ लावण्या शाह (पंडित नरेंद्र जी की सुपुत्री), रजनी भार्गव (अनूप भार्गव की पत्नी) भी साथ बैठी हुईं थीं। डॉ॰ बाल शौरि रेड्डी, उनकी पत्नी और विशाखापटनम से आई प्रोफेसर डॉ॰ षेक्षारत्नम (हिन्दी साहित्य किरण की अध्यक्ष) हमारे साथ ही बैठ गए। पहले मुस्कान का, फिर नामों का आदान प्रदान हुआ और सिलसिला आगे बढ़ा परिचय का, वार्तालाप का और फिर सोच-विचार की लेन-देन का। जब बातों-बातों में रेड्डी जी ने बताया कि वे आंध्राप्रदेश से आए हैं तो मेरी भावनात्मक जज़्बों की ज़मीं हरी हो गई । मैं भी आंध्रा प्रदेश की पली-बड़ी, जहां स्कूल में दूसरी भाषा के तौर तेलुगू भाषा पढ़ने की अनिवार्यता मुझपर भी लागू रही। मैंने तुरंत उनकी ओर देखते हुए कहा -"मीरू एटला उनाऊ सर ?' (हाउ आर यू सर?), यह सुनते ही वे बहुत खुश हुए कि मैं एक सिन्धी भाषी होते हुए अमेरिका में बैठी अपनी प्रांतीय भाषा में बतिया रही हूँ। यह था उनसे मेरा पहला परिचय!

किसी भी भाषा का साहित्य, चाहे वह हिन्दी हो, या तेलुगू, सिन्धी का हो या भोजपुरी, उस भाषा का वैभव है, उस भाषा का सौंदर्य है. हिंदी केवल भाषा नहीं, हमारी राष्ट्रभाषा है, हमारी पहचान है, बहती गंगा है, मधुर वाणी है. उसका विकास हमारे भारत देश के मान सम्मान और उज्वल भविष्य के साथ जुड़ा हुआ है।

डॉ॰ बालशौरि रेड्डी बहुआयामी व्यक्तित्व के मालिक रहे, उनका हिन्दी भाषा के साथ लगाव और प्रेम उनकी बातों से झलकता रहा-सरल हिन्दी भाषा में उनके संवाद, विचारों में पुख्तगी और सोच एक दशा और दिशा दर्शाती हुई। कहीं कोई दो राय नहीं जब वे कहते थे - "हिंदी भाषा नहीं है, एक प्रतीक है, भारत की पहचान है"।

विदेश में हिंदी को बढ़ावा मिल रहा है, यह वहाँ पर बसे प्रवासी भारतियों की मेहनत का नतीजा है. अनेक भाषाओं के आदान-प्रदान से हमारी संस्कृति पहचानी जाती है. देश की तरक्की उस की भाषा से जुड़ी हुई होती है. इसमें बड़ा हाथ साहित्यकारों, लेखकों, संपादकों और मीडिया का है. हिंदी भाषा जो हमारे साहित्यक, सामाजिक, और संस्कृतिक कार्यों का माध्यम है और वही अब एकता को दृढ़ करने लगी है. भारत की आवाज़ आज अंतराष्ट्रीय स्तर पर सुनी जा रही है यह एक उपलब्धि है।

"**हिंदी और बाल साहित्यः विषय डा॰ बालशौरि रेड्डी की अध्यक्षता में** बहुत ही रुचिकर विषय रहा, शायद इसलिए कि उन्होने मनोवैज्ञान रूप से बच्चों के विकास और उन्नति पर अनेक सुझाव पेश किए, जिसमें न्यू यॉर्क की वरिष्ठ लेखिका सुषम बेदी ने भी अपने सशक्त विचार रखे। मुझे आज भी याद है, श्री बालशौरि रेड्डी ने अपनी प्रतिक्रिया में संक्षेप में बताते हुए कहा था " बाल साहित्य के सूत्रों से आपका कहने-सुनने का नाता था, है और चलता रहेगा. टिमटिमाते सितारे, पानी में मछली, , जिज्ञासा भरे प्रश्न उत्पन करती है, प्रश्न-उत्तर की चाहत रखता है, बस बाल-मन समझने की जरूरत है, चिंतन मनन के पश्चात उसको पाचन करने का समय देना हमारा कर्तव्य है. " ज्ञान की वैज्ञानिक रूप से बाल मन जैसी सरल परिभाषा!!

रेड्डी जी की रचनधर्मिता: रेड्डी जी अपने नाम अनुसार शौर्य मान है, यह शौर्य शिक्षा-दीक्षा के क्षेत्र में प्रकट हुआ। मैट्रिक पास करते ही वे शिक्षक-शिक्षण में भर्ती हुए, और कुछ समय बाद ही प्रचार सभा की सेवा में लग गए। हिन्दी के प्रचार और प्रसार में उनका योगदान अविस्मरणीय है। तमिल के प्राचीन ग्रंथ 'तिरुवकुलम' में कहा गया है-"जन्मो तो यशस्वी हो कर जन्मो, नहीं तो न जन्मना श्रेष्ठ है।" उनकी निष्ठावान सोच और कार्य प्रणाली ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि वे हिन्दी के साधक हैं। उनकी प्रतिभा सर्वमुखी है, गध्य और पध्य दोनों को निरंतर समान गति से लिखते है। जितनी सहजता से उनकी लेखनी कविता का सृजन करती है, उतनी ही सहजता से लेख निबंध, कहानियाँ और उपन्यास भी वे बुनते हैं, जिनमें शैली और प्रवाह दोनों हैं। शब्दों के झरोखे से झाँकती है उनकी वैचारिक स्वछंदता, गहन चिंतन-मनन, अनुभव, रंजकता, रागात्मकता, और सौन्दर्य बोध जिसका एहसास पाठक को सहज ही होता है। उनकी अब तक हिन्दी में 72 तथा तेलुगू में 16 पुस्तकें प्रकाशित हुई है। उनके साहित्य पर 18 पी॰ एछ॰ डी , 9 एम॰ फिल हो चुके हैं। कुछ मौलिक उपन्यासों के यहाँ उलेख करना ज़रूरी है- वे हैं-

शबरी, ज़िंदगी की राह, यह बस्ती: यह लोग, स्वप्न और सत्य। उनके उपन्यासों का अनुवाद कन्नड, गुजराती, डोंग्री, तेलुगू में हुआ है। उनकी दो कहानियों 'हड़ताल' और 'चाँदी का जूता' का मैंने सिंधी भाषा में अनुवाद किया है। बाल साहित्य में भी उनकी लेखनी का खुला हुआ विस्तार है जैसे---तेनालीराम के लतीफे, न्याय की कहानियाँ, दक्षिण की लोक कथाएँ, तेनालीराम की कहानियाँ, और हर-हर गंगे (एकाँकी-संग्रह), संस्कृति एवं सहितय से संबधित उनकी पुस्तक 'पंचामृत' हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद में प्रकाशित हुई है। लेखनी की तरह प्रकाशन का विस्तार भी अत्यंत वसीह है!

"प्रवासी पुस्तक प्रदर्शनी" के दौरान, प्रदर्शनी को क़रीब से देखने के लिए सभी वरिष्ठ साहित्यकार अपने अपने समयानुसार आए और अपनी टिप्पणी वहीं रखे हुए एक रजिस्टर में दर्ज करते रहे। जिसमें से कुछ नाम मुझे याद आ रहे हैं, राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष डा॰ गिरिजा व्यास, देवनागरी लिपि के अध्यक्ष श्री बालकवि बैरागी, श्री कमल किशोर गोयनका, श्री गौतम कपूर , डा॰ बालशौररि रेड्डी और अन्य सभी के भी अपनी टिप्पणी दर्ज की थी । बलशौरी जी ने प्रवासी साहित्य के संगठित प्रदर्शन को बहुत सराहा और भारतीय प्रवासी लेखन के समृद्ध साहित्य के लिए वहाँ मौजूद सभी लेखकों को मुबारकबाद देते हुए कहा "आप सभी बधाई की पात्र हैं, कि वतन से दूर भी आपने एक और भरत यहाँ निर्मणित किया हुआ है और अपनी मात्र भाषा को, भारत की सभ्यता, संस्कृति को बनाए रखा है"

उस मुलाक़ात के बाद उनके साहित्य को, उनपर लिखे लेख और कहानियों को पढ़ते हुए उनके समृद्ध साहित्य से परीचित हुई। कई बार इन विषयों पर उनसे फोन पर बात करते हुए उनके व्यक्तित्व, कृतित्व की झलकियों से भी वाकिफ़ होती रही। बातों से जानना हुआ कि उन्होने 23 वर्ष 'चन्दामामा' बाल पत्रिका का सम्पादन किया। बच्चों के सिलसिले में जब मैंने उनसे पूछा की आप उनका मन कैसे टटोलते हैं? तो बहुत ही सरल ढंग से उत्तर देते हुए उन्होने कहा- 'कि वे बाल मनोवैज्ञानिक के रूप में बच्चों से आदान प्रदान उनके ही स्तर पर जाकर करते हैं, और उन्हें समझने की कोशिश करते हैं, शायद ही नहीं, यक़ीनन इसी बल और निष्ठा की नींव पर ही वे बच्चों की पत्रिका 'चंदामामा' में उनकी पसंदीदा सामग्री का चुनाव करते रहे होंगे। सामाग्री का चुनाव उनके शब्दों में "जो बालमन को संतुष्टि प्रदान करे और उनके हर सवाल का जवाब देते हुए उनके मन का भी विकास करे।"

श्री बालशौरि रेड्डी का वात्सल्य व अपनत्व उनकी शख्सियत का एक अहम पहलू है। जब भी मिले अपनाइयत के साथ और बातचीत में भी भाषा पर हुए वाद-विवाद पर अच्छे सुझाव देते रहे। उन दिनों प्रवासी साहित्य का मुद्दा आम मंज़र पर था, प्रवासी साहित्य को लेकर कुछ सवाल उठे कि वह हिन्दी का साहित्य है भी या नहीं? प्रवास में बसे हुए भारतीय साहित्यकार की हिन्दी साहित्य के अन्तरगत कोई भी रचना, ग़ज़ल या लेख भारतीय पत्रिकाओं में प्रकाशित होती तो ऊपर लिखा हुआ होता-प्रवासी साहित्य। सवाल यह उठता है कि प्रवास में लिखा यह साहित्य भारत के हिन्दी साहित्य की धारा का हिस्सा है या नहीं? उसे हिन्दी का साहित्य माना भी जाता है या नहीं? ऐसे कुछ उलझन भरे सवाल मंथन उपरांत उभरे। बालशौरि रेड्डी जी से चेन्नई में फोन से इस विषय पर बात की और अपना सवाल उनके सामने रखते हुए उनकी राय जाननी चाही। उन्होने बड़ी ही सरलता से उत्तर देते हुए कहा "हिंदी का साहित्य जहाँ भी रचा गया हो और जिसने भी रचा हो, चाहे वह जंगलों में बैठ कर लिखा गया हो या ख़लिहानों में, देश में हो या विदेश में, लिखने वाला कोई आदिवासी हो, या अमेरिका के भव्य भवन का रहवासी, वर्ण, जाति धर्म और वर्ग की सोच से परे, अपनी अनुभूतियों को अगर हिंदी भाषा में एक कलात्मक स्वरूप देता है, तो वह लेखक हिन्दी भाषा में लिखने वाला क़लमकार होता है और उसका रचा हुआ साहित्य हिन्दी का ही साहित्य है।" तमिलनाडू हिन्दी अकादमी के अध्यक्ष डा॰ बालशौरि रेड्डी का इस विषय पर यह सिद्धाँतमय कथन है।

साहित्य के माध्यम से ही हम एक दूसरे से जुड़ सकते है. प्रवासी साहित्य को लेकर हिंदी की मुख्य धारा से जोड़कर एक मुकमिल कदम उठा सकते है, जिसमें भारत के हिन्दी लेखन की धारा प्रवासी साहित्य से मिलकर पुख़्तगी पा सके और एक महासागर का स्वरूप धारण कर पाये। पर धारा में होने और न होने के अंतर में भी लक्ष्मण रेखा की उपस्थिती दर्ज दिखाई पड़ रही है।

उनसे मेरी दूसरी मुलाक़ात महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा 3,4,5,अक्टूबर 2008, में आयोजित **"सर्व भारतीय भाषा सम्मेलन"** के दौरान हुई, जहां भाषा, साहित्य, संस्कृति के संगम की सरिता, अपने वाद-विवाद की पथरीली पगडंडियों के बीच से बहती रही। भारतवर्ष

की बुनियाद "विविधता में एकता" की विशेषता पर टिकी है और इसी डोर में जुड़ी हैं देश के विभिन्न धर्म, जातियाँ, व भाषाएँ. **सर्व भारतीय भाषा सम्मेलन** के इस मंच पर भारतीय भाषाओं के इतिहास में एक नवसंगठित सोच से नव निर्माण की बुनियाद रखी गई . मेरे पूछने पर कि वे अब तक कितने विश्व हिन्दी सम्मेलनों में भागीदार रहे हैं? रेड्डी जी ने बड़ी सरलता से बताया कि वे पाँच विश्व हिन्दी सम्मेलनों में शामिल रहे हैं, सूरीनाम के छट्ठे विश्व हिन्दी सम्मेलन में वे अनुवाद संगोष्ठी के अधयक्ष रहे, और यहाँ न्यू यॉर्क के आठवें सम्मेलन में भी वे "बाल साहित्य" संगोष्ठी के अध्यक्ष रहे। समस्त भारतीय भाषाओं पर जब महयज्ञ होता है तो हर प्रांत से देस-विदेश से प्रतिनिधि अपने विचारधाराओं, व सुझावों के माध्यम से अपना-अपना योगदान देते हैं। ऐसे ही एक स्वर्ण, सुअवसर पर, देश विदेश से वरिष्ठ राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय साहित्य के स्तभ साहित्यकारों से मिलने का अवसर मिला- इस **"सर्व भारतीय भाषा सम्मेलन"** के महयज्ञ में मेरी भागीदारी सोने पे सुहागा बनी।

हर देश की तरक्की उसकी भाषा से जुड़ी हुई होती है, जो हमारे अस्तित्व की पहचान है, उसकी अपनी गरिमा है. भाषा केवल अभिव्यक्ति ही नहीं, बोलने वाले की अस्मिता भी है, औरन संस्कृति भी है जिसमें शामिल रहते हैं आपसी संबंधों के मूल्य, बड़ों का आदर-सन्मान, परिवार के सामाजिक सरोकार, रीति-रस्मों के सामूहिक तौर तरीके. रेड्डी जी मूलत तेलुगू भाषी थी लेकिन हिन्दी भाषा के लिए उनका प्रेम एक साधना रही। वे हमेशा कहा कराते थे 'मेरी दो-दो मतरभाषाएँ है" । उनकी सृजनशीलता से हम वाक़िफ़ हैं, वे तेलुगू और हिन्दी के हस्ताक्षर थे, जिसके विस्तार में बालसाहित्य के साथ साथ उपन्यास, कहानी, निबंध, समीक्षा, आलोचना, आदि विधाओं के माध्यम से दक्षिण भारत में हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार की दिशा दर्शाने में उल्ले खनीय योगदान दिया। मौलिक लेखन के बावजूद उन्होने अनुवाद को भी महत्वता देते हुए भाषाओं की परीधियों में फासले कम करने की चेष्ठा की। यह होती है एक स्रजनशील लेखक की जवाबदारी जो समाज में सकारात्मक क्रांति लाने में सक्षम होती है।

कवि या लेखक समाज का दृष्टा होता है। श्री बलशौरी रेड्डी की कल्पना में एक आदर्श कुनीति रहित समाज वह है जहां जातिभेद न हो, वर्ण भेद न हो, सामाजिक कुनीतियाँ न हों, सब शिक्षित हों, सामाजिक कुनीतियों से परे हो, कुछ ऐसे सिद्धान्त उनकी सोच में कूट- कूट कर भरे हैं। उनका मानना है कि भाषा हमारे और आपके विचारों का माध्यम है। हिंदी को राष्ट्रीय भाषा का गौरव देने के लिए वे हिंदी में लिखते हैं। भाषा के मामले में उनके वैचारिक

प्रतिभा से मैं तब परिचित हुई, जब एक साक्षात्कार में उन्होने तेलुगू भाषी होते हुए हिन्दी लेखन करने पर किए गए सवाल को सरल समाधानित रूप में जवाब देते हुए कहा-"मैं हिन्दी का लेखक हूँ यह कहने में मुझे गर्व महसूस होता है। जब मैं हिन्दी में लिखता हूँ तो हिन्दी का लेखक होता हूँ, इसका मेरी मात्र-भाषा से कुछ लेना देना नहीं है।" बात स्पष्ट हो जाती है जब मूल भाषा में लेखक लिखता है तो वह अपनी मात्र भाषा का लेखक होता है। पर बावजूद इसके वह अगर हिन्दी में लिखता है तो उसे अहिंदी या हिंदीतर करके संबोधित करना एक तरह से लेखक का और भाषा का अपमान है।

"हिन्दी-विश्व कव्यांजलि (प्रथम-खंड) जिसका सम्पादन डॉ॰ राजेन्द्रनाथ मेहरोत्रा जी ने किया है, उसी ग्रंथ के प्राथमिक पन्नों में हिन्दी के उन्नायकों एवं निर्माताओं का चिंतन पेश किया गया है। यहाँ हिंदीतर भाषी प्रांत तमिलनाडू के प्रख्यात हिन्दी मनीषी एवं तमिलनाडू हिन्दी अकादमी के अध्यक्ष **डा॰ बालशौरि रेड्डी** का कथन यूं दर्ज है- "विश्व में सभी स्वाभिमानी गणतन्त्र राष्ट्रों के चार स्तम्भ होते हैं, उनका अपना एक संविधान होता है, अपनी एक राष्ट्रभाषा होती है, एक राष्ट्रध्वज होता है, एवं एक राष्ट्रगान होता है। आज राष्ट्रभाषा के अभाव में भारत को एक गणतन्त्र राष्ट्र मानना कहाँ तक उचित है, यह राष्ट्र के प्रबुद्ध विचारकों को सोचना चाहिए। विश्व में ऐसा कोई गणतन्त्र नहीं है जिसकी राष्ट्भाषा यानि प्रशासनिक भाषा विदेशी भाषा हो। यह एक दस करोड़ भारतवासियों के लिए लज्जा की बात है। इसका तात्पर्य है कि हम अपनी भाषा व संस्कृति की दृष्टि से आज भी मानसिक रूप से परतंत्र हैं, गुलाम है।"

हिन्दी के लिए उनकी अस्था, निष्ठावान प्रेम अपने आप में बेमिसाल है. 1928 जुलाई में जन्मे श्री बलशौरी रेड्डी 15 सितम्बर 2015 के दिन हमें छोड़ गए, यह साहित्य जगत में एक कभी न भरने वाली क्षति । ऐसे हिन्दी सेवी को उनकी मौन साधना के लिए शत शत नमन।

जयहिंद

देवी नागरानी

मुखपृष्ठ

3

 जनाब दीक्षित दनकौरी से बातचीत

-देवी नागरानी

उनसे मुलाकात के चँद लम्हें जो यादों में शामिल रहे हैं आपके साथ बाँट रही हूँ. बातचीत का सिलसिला ग़ज़ल से शुरू होकर ग़ज़ल पर ख़त्म हुआ। उनका यह शेर जो बड़ी सादगी से उन्होने सुनाया-----!!

शेर अच्छा बुरा नहीं होता
या होता है या नहीं होता

जनाब दीक्षित दनकौरी जी की ग़ज़ल का यह शेर ग़ज़ल को संक्षिप्त रूप में परिभाषित कर रहा है, सीधी सी बात है, दो राय यहाँ कुछ भी नहीं। एक निश्चित पड़ाव, एक सोच, एक निर्णय!!

"दीक्षित दनकौरी की शायरी-पढ़कर यूं लगता है जैसे हिंदी-उर्दू गले मिल रही है" नूरजहाँ 'सरवत' की ज़ुबान में ' दीक्षित दनकौरी जी की ग़ज़ल के क्षितिज का माप दंड है उनकी अदायगी जो भाषाओं का संगम बनी हुई है, हिंदुस्तान की दो ज़ुबानों को एक दूसरे के करीब लाने का यह एक नेक शगुन है. कुछ आशयार पढ़कर ग़ज़ल लिखने वाले इस बात से सहमत ज़रूर होंगे....

हर कोई पढ़ लेता है
मैं न हुआ अख़बार हुआ.

जो हक़ीकत बयाँ कर दूँ
मुट्ठियाँ तान लोगे तुम

उसने पूछा लिया कैसे हो

अँखों में आँसू भर आए.

नदिया आपा खो बैठी
जब सागर ने देख लिया.

श्री राम प्रकाश 'राही ' जी का कहना है-- "दीक्षित दनकौरी नई खेप का शायर है. उसके पास शायरी बराय शायरी का हर्ब भी है, और वो शेरियत के रंगो-आहंग से खालिस तग़ज़्ज़ुल का हक़ भी अदा करता है."

इन जनाब की ग़ज़लों का स्वभाविक व्यंग्य भीतर तक छील देता है. तराशी हुई भाषा, ककसाव और तुकाँतों का सहज प्रयोग ही उनको कुशल ग़ज़लकार सिद्ध करता है. ग़ज़ल में प्रयोग किये गए शब्द, प्रतीक, बिंब, विचार, और कथन का लहज़ा उनके व्यक्तित्व को ज़ाहिर करते चले जाते हैं. "

शाइरी की विशाल सड़क को अपनी रफ़्तार से तय करते हुए अपने तमाम तजुर्बों को गुफ़्तगू की रवानी में ढालते हुए प्रसिद्ध ग़ज़लकार दीक्षित दनकौरी जी से मेरी पहली मुलाकात व बातचीत एक यादगार बन गई तारीख 5, जनवरी २००८ श्री आर.पी.शर्मा 'महरिष', उनके सुपुत्र श्री रमाकांत शर्मा और मैं

(तस्वीर में श्री माणिक वर्मा, महरिष जी, मैं- देवी नागरानी, दीक्षित दनकौरी जी)

दुपहर के चार बजे के क़रीब उनसे मिलने मुंबई की होटल 'शारदा', गए जहाँ वे बड़ी अपनाइयत और आदर के साथ सभी को अभिनंदन करते हुए अपने कमरे में ले आये और बड़े अदब के साथ 'महरिष' जी की उपस्थिति में सबसे वार्तालाप करते रहे । ग़ज़ल के सफ़र के हर मोड़ से गुज़रते हुए जो एहसास दीक्षित जी ने महसूस किये उन्हें बातचीत के दौरान बड़ी सहजता के साथ व्यक्त करते रहे. एक तरह से वे इस सफ़र से गुज़रते हुए जिन अनुभवों से रूबरू हुए, वही हमारे साथ बांटते रहे। वहीं हमारी भेंट श्री माणिक वर्मा जी के साथ भी हुई , जो उसी होटल में ठहरे हुए थे। बातों के सिलसिले कुछ यूँ करवट लेते रहे कि वहीं बैठे -बैठे एक छोटी सी काव्य गोष्ठी हो गई. श्री माणिक वर्मा ने अपनी रचनाओं के कई शेर सुनाए, 'महरिष' ने दो चार शेर अपने प्रस्तुत किये और मैंने भी एक ग़ज़ल का पाठ किया। दीक्षित जी जैसे संचालन करते हुए अपने कई शेर सुना रहे थे।

जनाब दीक्षित जी अधिकांश शेर हर तजुर्बे के संदर्भ में सुनाते रहे और अपनी पाकिस्तान की यात्रा के बारे में जो तर्जुबे उन्हें हुए उन्हें यादों में फिर ताज़ा करते रहे। कभी तो मुझे लगने

लगा कि उनकी जुबान ग़ज़ल बोलती है वो बात-बात से रप्त रखते अनेकों शेर अपनी ब-ज़ुबानी रवानगी में कहते रहे, और हम सुनते रहे।

दूसरे दिन उनका आना श्री 'महरिष' जी के यहाँ तय था और मैं फिर वहीं उनसे दूसरी बार मिली। वहीं पर मरियम गज़ाला जी भी आ पहुंची। शाम को हमें मिलकर श्री सागर त्रिपाठी द्वारा दीक्षित दनकौरी जी की शान में आयोजित की हुई गोष्टी में जाना था।

उनकी अपनी शाइरी की किताब "**डूबते-वक्त**" जो हिंदी व उर्दू लिपियों में प्रकाशित हुई है उन्होने मुझे इनायत की । गुफ़्तगू की दौरान '**ग़ज़ल-दुष्यंत के बाद'** जिसके दों संकलन उनके संपादन के तहत मंजरे-आम पर आ चुके थे, उनके बारे में बातचीत हुई . कई सवाल मेरे मन में करवट बदल बदल कर उभरते रहे, और जब मैंने उनसे अनेक सवाल पूछे तो उन्होंने अपने मन की स्पष्टता के साथ बड़ी ही सादगी और सरलता के साथ जवाब दिये। मेरे प्रश्नों के सविस्तार जो उत्तर उन्होंने दिये जो निम्नानुसार हैं...

प्रश्नः 'ग़ज़ल दुष्यंत के बाद' का मंजेर-आम पर आना और तद उपरांत, और तीन श्रृंखलाओं का संपादन कोश करते हुए आपको कैसा महसूस हुआ, इस बारे में कुछ बतायें?

उतर: "ग़ज़ल दुष्यंत के बाद' यह संग्रह एक तरफ़ है और संपादन एक तरफ़." इस बात को कहते हुए उन्होंने जोश भरे शब्दों से इस विषय पर रोशनी डालते हुए कहा -"यह एक ऐतिहासिक काम होगा, जैसे समुद्र मंथन में विष भी निकलता है और अमृत भी, इसी तरह इस ऐतिहासिक कार्य में भी दोनों सिरे दिखाई देंगे वह यह कि कैसे ग़ज़ल पुख्ता हो रही है और कैसे लड़खड़ा रही है."

बात के सिलसिले को आगे बढ़ाते उन्होंने कहा -" शायद सूरज की पहली किरण को रोशनी का स्तंभ माना जाता है और ग़ज़ल दुष्यंत के बाद तो सदैव प्रकाश स्तंभ बना रहेगा । ये नवोदित ग़ज़लकारों के लिए मार्गदर्शक बन कर, आने वाले कल की राहें रौशन करेंगी। आगे विधा के सिलसिले में स्पष्टता से कहा -"इस विधा में शुरूवाती दौर में छोटी बहरों की ग़ज़लें सार्थक रहती है. ज्ञान के द्वार खटखटाने से इल्म की रोशनी जब बढ़ने लगती है, तब इस में इल्म के साथ उरूज़ की बारीकियाँ भी अपना रंग दिखाती है, जो निखार लाने में पहल करती हैं। इन सभी तत्वों का सम्पूर्ण ज्ञान ग़ज़लों के रूप में इन सन्दर्भ ग्रंथों से हासिल होगा। बहुत कुछ सीखने कि संभावनाएं सामने होंगी।"

प्रश्नः दुष्यंत जी की ग़ज़ल विधा आपकी चहेती है, इस विधा की ज़रूरतों को नज़र में रखते हुए इन संकलनो के संदर्भ को आप आधार स्तंभ मानते है। आप यह बताएं कि दुष्यंत की शाइरी में आपने ऐसी क्या खासियत पाई जो आपने इन प्रकाशित सन्दर्भ ग्रंथों को इस विधा के आधार स्तंभ कहा है ?

उतर: दुष्यंत की शाइरी आम जुबान की भाषा है, कथ्य के स्तर पर आज आदमी की अपनी

रोज़मर्रा की भाषा में है जिसे वह बख़ूबी समझता है. बोलचाल की भाषा में आम इन्सान अपने मनोभावों को बहुत सरलता से व्यक्त कर पाता है, और पढ़ने वाल भी उस भाषा की सरलता को समझते हुए उसका लुत्फ़ ले पाता है। दिलों को जोड़ने वाली भाषा और शैली सरलता से अपनायी जाती है।"

प्रश्नः संपादन के दौरान में आपने क्या महसूस किया, कुछ इस कोण पर अपने अनुभव बतायें, कि इस ग़ज़ल सम्पादन के विस्तार में आपने शामिल करने के लिए ग़ज़ल के रचनाकारों का किस स्वरूप में चुनाव किया, क्या चुनाव के लिए कोई मापदंड ध्यान में था?

उतर: इसमें हर क्षेत्र, हर वर्ग के उत्तम, मध्यम और कम वर्ग के सेक्टर के लोगों की ग़ज़लें भी शामिल हैं, जिनमें जज भी है, डॉक्टर भी, गृहिणी से लेकर एक किसान तक भी है । सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही कि छंद-शास्त्र की विधि को मद्दे-नज़र रखकर किया गया उनका कार्य, उनकी अनुभूति भी थी और अभिव्यक्ति भी। अपने मन के मंथन को ग़ज़ल विधा के रूप में प्रस्तुत करने का उनका प्रयास महत्वपूर्ण है, यही ध्यान में रखते हुए मैंने सभी की भावनात्मक मनोभावों को ग़ज़ल के रूप में स्वीकार किया।

प्रश्नः नवोदित ग़ज़लकार इन संकलनों से किस प्रकार लाभान्वित होंगे ? कहाँ तक ये संकलन उनका मार्गदर्शन कर पायेंगे?

उतरः नवोदित रचनाकारों के लिये यह रचनात्मक संग्रह मार्गदर्शक होंगे। ये ग़ज़लें विविध बहरों के आधार पर लिखी गई हैं, एक तरह से ये संग्रह अनेकों काफ़िये व रदीफ़ों का संकलन भी हैं। ग़ज़ल-सरिता की धारा बन कर बहने लगी है और यह सैलाब ग़ज़ल लेखन-कला को सम्रद्ध करेगा, इसमें दो राय नहीं है। यही नींव का पत्थर बहुत ज़रूरी था और यही आने वाली पीढ़यों के लिये ग़ज़ल-विधा की बेमिसाल टक्साल बन कर मार्गदर्शक करेगी। जब हम न होंगे तो संकलनों के शब्द प्रतिनिधि बनकर बोल उठेंगे और ग़ज़ल-गुफ़्तगू करेगी।

प्रश्नः दो संकलन आपके सफ़ल सम्पादन के तहत आ चुके है और तीसरा भी जल्द आ रहा है । क्या इसके बाद कुछ और संकलनों की संभावना है ?

उतर: दो तो आ ही चुके है, तीसरा फरवरी, २००८ तक तैयार हो पायेगा । इन तीनों में लगभग ७०० ग़ज़लकार है जिनकी बंदिशें इनमें शामिल है। आगे के संकलन की संभावना पर हामी भरते हुए जनाब दीक्षित जी कहने लगे " चौथे संकलन का आगाज़ भी होगा जिसमें २५० और ग़ज़लकार स्थान पा सकेंगे, इसकी संभावना प्रबल है और इस विधा का क्षितिज- आसमान है."

दीक्षित जी के निश्चय और अटल इरादे को देखकर यही लगता है कि अब गुफ़्तगू में भी ग़ज़ल ही वार्तालाप करेगी । उनका आत्मविश्वास, उनकी कार्य निष्ठा और संपादन की क्षमता इस बात की ज़ामिन है, कि ग़जल आज आम इन्सान के सर चढ़कर बोलती है. "ग़ज़ल की दुनिया में एक और सूरज उगा है" श्री कमलेश्वर जी के शब्दों में दीक्षित जी का यह कार्य अर्थ

की गहराइयाँ में अपनी संपूर्णता दर्शा रहा है.
प्रस्तुतकर्ता: देवी नागरानी,

[मुखपृष्ठ]

4

सुलगते मौन का शब्दकार: लक्ष्मण दुबे

-देवी नागरानी

अंतस में हो खलबली सुलग उठे जब मौन
क़लम उगलती आग हो चुप रहता है कौन !

उफ़ मायूसी, घुटन, उदासी
या तन्हाई मिट्टी-मिट्टी
वफाएँ, आबरू, गैरत, हया, हसरत, कुंवारापन
खरीदो शौक़ से यारो सभी सामान बिकता है

लक्ष्मण दुबे जी का नाम समकालीन रचनाकारों में एक महत्वपूर्ण पहचान रखता है, जिनके रचनात्मक विस्तार में पनाह पाते हैं-ग़ज़ल, गीत, पद, दोहे, रुबाई, समीक्षात्मक आलेख आदि .... । वे सिर्फ़ हिन्दी में ही नहीं, सिन्धी भाषा के ग़ज़ल संसार के बादशाह भी माने जाते हैं।

ज़िंदगी जंग छोटी-सी तो नहीं
मैंने जाना है पर लड़ी तो नहीं... स्वयंरचित

लेकिन लक्ष्मण जी ने ज़िंदगी की महाभारत को लगातार जाना है, लड़ा है और शब्दों की शिल्पाकृतियों के माध्यम से अपनी जद्दो-जहद को व्यक्त किया है। अपनी रचनाओं द्वारा दर्शाते हैं ज़िंदगी की समझ, जीवन संघर्ष, अपने ही अंदाज़ में, शब्दों के रख-

रखाव द्वारा बेजान अभिव्यक्ति में जान फूंकने का हौसला रखते हैं। ग़ज़ल उनकी प्रिय विधा है क्योंकि उन्हीं के शब्दों में वह अभिव्यक्ति का सर्वथा सामयिक उपयुक्त तथा बलवतर माध्यम है। सध्य: प्रकाशित **'समकालीन रचना और रचनाकार'** पुस्तक में लक्ष्मण दुबे जी के व्यक्तित्व और कृतित्व के विभिन्न आयामों का सशक्त रूप से प्रस्तुतीकरण हुआ है, !!! उनकी कुशलता की बानगी देखें:

शब्द पथ पर मौन का इक घर मिले
फ़िर ज़रा आगे मुझे ईश्वर मिले
समझ लो उस जगह पर आप ही इंसान की क़ीमत
जहां दो कौड़ियों के दाम पर भगवान बिकता है

रचनाकार सामाजिक स्थिति पर संवाद की भूमिका तैयार करता है। लक्ष्मण दुबे जी के रचना क्षितिज पर अनेक इंद्रधनुषी झलकियाँ दिखाई देती हैं, जिनमें शामिल हैं मुहब्बत, बेबसी, आशा-निराशा, हौसला और एक जागरूकता। उनका अनूठा अंदाज़े-बयां उनकी शब्दावली में पाया जाता है, भाषा पर उनका सम्पूर्ण अधिकार है। माधुर्य/ सौंदर्य उनकी भाषा की विशेषता है, भावनात्मक तथा वर्णात्मक दोनों शैलियों का प्रयोग उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। इस अभिव्यक्ति में उनकी गहराई और गीराई देखें॥ मसलन .....

रात भर एक पंछी मंडराया
कल जहां पर चीख़ दफ़नाई गई

संक्षिप्तता शेर की जान होती है, औ इस प्रदर्शन में लक्ष्मण जी को महारत हासिल है। उनके दोहे हर काव्य गोष्टी में जान फूँक देते है, शायद इसलिए कि वे सोच के तानों-बानों से उन्हें सहज ही बुन लेते हैं। नए-नए विचारों को, नए अंदाज़ में, केवल दो पंक्तियों में बांधने का काम तो दरिया को कूजे में भरने जैसा दुष्कर है, पर दुबे जी वह कर दिखाते है जो सोच भी सोच नहीं पाती....

पढ़कर भी हम हैं जाहिल
तालीम का असर है
मज़हब की चकी चली, दूर हुआ इंसान
दीमक के आगे भला क्या गीता क्या कुरान

नाज़ुक, पेचीदा मामलों को और समस्याओं को शेर के बुनियादी गुण– यानि

संक्षिप्तता में प्रस्तुत करने का कठिन काम वे आसानी से कर गुजरते हैं। कविता संवेदनशील हृदय की उपज है, जिसके अनेक स्वरूप है, पर ग़ज़ल के शे'र तो जीवन के लिए उदाहरण बन जाते हैं।

लिख लिया तूने बहुत कुछ फूल, तितली, बाग पर

अब ज़रा इस बाग के उजड़े शजर की बात लिख

लक्ष्मण जी की शायरी उसे मुखर भी करती है और मौन भी। मुम्बई के वरिष्ठ शायर श्री नन्दलाल पाठक जी का कहना है "ग़ज़ल मुक्तक में मुक्तक है" । एक ग़ज़ल के भीतर गीत भी समोहित होते हैं , इसीलिए ग़ज़ल राग और अनुराग का संयोग है, सोच से परे शब्दों के सार में डूबकर शायरी करते हुए लक्ष्मण जी लिखते हैं...

जिस्म के गहरे अंधेरे चीर कर

ले गयी उस पार मेरी शायरी

लफ़्ज़ आँसू बन गया वो

जो न पहुंचा था जुबां तक

शब्द को देखा ज़रा-सा चीरकर

एक व्याकुल मौन का लम्हा मिला

सामाजिक विसंगतियों, विद्रुपदाओं पर उन लेखनी देखिये किस तरह प्रहार करती है–व्यंग से, तुर्शी से.....

आंच देगा और तोड़ेगा तुझे वो

क्योंकि उसको मूल्य तेरा आंकना है

हो गयी अगवा सभी बीनाइयाँ

रंग-बिरंगे फूल काले हो गए

क्यों मुसीबत को बुलावा दे रहे हो

कालिमा को कालिमा कहना मना है

सिंधी में लिखी लक्ष्मण की कवितायें भी लगभग इसी ज़मीन की हैं। एक रूमानी छंद का अनुवाद करते हुए वे लिखते हैं......

बादलों की गोद में गुम चांदिनी

एक हसीना है समर्पण कर रही

समकालीन रचनाकार लक्ष्मण दुबे की रचनधर्मिता पद-पद मुखर है, और वही उनकी शख्सियत को एक अनूठी बुलंदी पर पहुँचती है.....

लिख शायर, बेखौफ लिख चढ़ा कलम पर धार

ऐसे लिख जैसे कोई लिखता है अंतिम बार

निर्द्धन से मत छीनना कभी भी उसकी आस

हो सकता है हो यही दौलत उसके पास।

 देवी नागरानी, न्यू जर्सी,

कृति: समकालीन रचना और रचनाकार, क़लमकार: लक्ष्मण दुबे, पन्ने: ९२, मूल्य: रु. १२५ , प्रकाशकः रजनी पब्लिशिंग हाउस, १/११८०७। पंचशील गार्डेन, नवीन शाहदरा, दिल्ली ३२

**

मुखपृष्ठ

5

विविध विधाओं के एक जागरूक कलमकार -मधुकर गौड़

-देवी नागरानी

गीत और गीतकारों का जहां कहीं भी प्रसंग छिड़ता है वहाँ श्री मधुकर गौड़ का संदर्भ और उल्लेख एक अनिवार्यता बन जाती है। समकालीन गीत रचना के यशस्वी गीतकार-मधुकर गौड़ सम्पूर्ण रूप से गीत

को समर्पित शख्सियत हैं। वे गीत के भाव जगत में कुछ इस तरह रच-बस गए हैं जैसे गीतलता का अमृत कुंड उनकी नाभि में बसा हुआ है। इसी कारण उनका सारा लेखन, संपादन, पत्राचार, संवाद और यहाँ तक कि निजी दिनचर्या भी गीतमयी हो जाती है। व्यक्ति के निर्माण में समाज का, उसके परिवेश व परिवार का महत्वपूर्ण योगदान होता है। कोई भी व्यक्ति सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता, और न ही अपनी प्रकृति से, जो उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व के साथ जब व्यक्ति जीवन-संघर्ष में शामिल होता है तब उसे अपने व्यक्तित्व की सार्थकता महसूस होती है। जी हाँ मैं मुंबई से गत 28 वर्षों से छंद को समर्पित चर्चित पत्रिका "सार्थक" के सम्पादक एवं "मरुधारा' राजस्थानी भाषा में नवांतर साहित्य की अनूठी छहमाही पत्रिका –जिसका 2010 से श्री मधुकर गौड़ जी सम्पादन करते आ रहे हैं उनका ज़िक्र कर रही हूँ।

साहित्य सफर में अपने स्वतंत्र लेखन की डगर पर अथक सफर के पथिक श्री मधुकर गौड़ जी ने विविध विधाओं में सृजन किया है और एक जागरूक कलमकार के रूप में पहचान बनाई है। उनके गीतों की विविधता, वैभव, भाषा शिल्प का सौन्दर्य बोध छिपाए नहीं छुपता। सूरज के सामने उंगली रखने से भला प्रकाश कहाँ रुक पता है। समस्त जीवन उनके जिये हुए तजुर्बों और अनुभवों को उनके गीतों में विद्‌यमान है। सरलता भरा उनका व्यक्तित्व कई बार उनके घर पर मिलने पर सामने आता है कि किस तरह वे जवान पीढ़ी के लेखकों को नवगीत की राह पर मार्गदर्शित करते हैं और प्रोत्साहित भी करते हैं। अगर उन्हें कोई रचना गीत के गुणों से परे लगती है, या भाव बिन या लयात्मकता की कमी के कारण गीत सी न लगे, या वह गीत शब्दों से लदा हुआ हो, जिसमें आत्मा न हो--तो वे बड़ी साफ़गोई से कह देते हैं, यह कैसा गीत है? गीत को गीत जैसा लगना होना चाहिए, नदी, हवा की तरह लयमय, दिल की धड़कन की तरह लयमय। गीत का मतलब है लय...!

राजस्थान के मरुस्थल से निकलकर मुंबई महानगर में कश्मकश के हर दुर्गम पड़ाव को पार करते हुए हिन्दी काव्य जगत में अपनी एक सर्वोतम पहचान बनाकर बस जाने वाले गीत-यात्री मधुकर गौड़ के लिए हिसार के प्रो॰ उदयभानु 'हंस' का कहना है - "मधुकर गौड़ एक व्यक्ति का नाम नहीं बल्कि एक सजीव आंदोलन, एक शिवसंकल्प से प्रेरित अभियान, एक मिशन का नाम है। वह साहित्य जगत का एक भगीरथ है।" सच भी है। जीवन की पुस्तक का हर रोज़ एक नया बाब पलटने वाले, पलटकर पढ़ने वाले कर्मयोगी श्री मधुकर गौड़ जी, गीतों को जैसे सोच के संग से तराशकर सजीव कर देते है, कुछ यूं कि लय

में धड़कते हुए दिल की मानिंद गीतों के शब्द भी सहृदय से निकलकर साँस साँस धड़कते हुए से लगते हैं। सांस सांस गीत में मधुकर जी खुद भी इस बात की पुष्टि करते हुए लिखते हैं-

पाषाणों के सीने से भी /जल निकलता रहता है

सच्चे मन से बात करो तो /हल निकलता रहता है

डॉ. किशोर काबरा ने (अहमदाबाद) मधुकर जी के गीतों के प्रति अपनी आस्था स्पष्ट शब्दों में ज़ाहिर करते हुए लिखा है --"ईमानदार शब्दों में, ईमानदार मन की, ईमानदार अभिव्यक्ति' इस पंक्ति में उनके गीतों की व्याख्या है. मधुकर जी नख से शिख तक गीत ही गीत है, शायद इसीलिए उनकी भावनाएँ भी शब्दों में सांस लेते हुए कहती हैं --

गाते गाते गीत मरूँ मैं / मरते मरते गाऊँ

तन को छोड़ूँ भले धरा पर /गीत साथ ले जाऊँ

अद्भुत सत्यम, अद्भुत शिवम, अद्भुत सुंदरम!

गीतों को समर्पित इस साधक की वाणी में ओज तथा निर्भीकता स्पष्ट झलकती है! अभिभूत करती वाणी!

आपकी की बतियाती भाषा में मार्मिक बिंबों की भरमार---'ईमानदार शब्दों में, ईमानदार मन की, ईमानदार अभिव्यक्ति के स्वरूप देखें —

ग्रंथ अनेकों लिखे गए जीवन में

लेकिन अब भी भेद बहुत से कहने हैं।

यथार्थ आँकती, और झूठ के विरुद्ध शंखनाद करती है उनकी वाणी मशाल जलाए रखने वाले साहित्य के अजय-योद्धा के प्रतीक स्वर सी उनकी बानगी देखें --

भाग्य भरोसे कैसे छोड़ूँ / गति का कायल हुआ हमेशा

अक्षर को स्वर तक पहुंचाने /सरगम घायल हुआ हमेशा

भाषा में मार्मिक बिम्बों की भरमार देखें इस बानगी में --

संस्कार की नथ के मोती बिखरे हैं / टिकुली की बातों ने

संयम तोड़ दिये, /अब कंगन पर दोष लगाना ठीक नहीं,

अब घूँघट ने सारे /नियम तोड़ दिये ! (साँस साँस गीत)

वे आज के समय की विषमताओं को शब्द देते हैं-

कौन चवन्नी की सुनता है /रोज रुपया रौब जमाता,

किस्मत का बेचारा / नए नए ताबीज बनाता.....

इसी तरह वे प्यार के प्रति भी खूब संवेदनशील हैं –

जी करता है हरियाली संग / चौपड़, ताश बैठ कर खेलूं

और मोहिनी के अन्तस की /पीर बाँध कर कांधे ले लूं.

शब्दों में सौन्दर्य छलकाता एक और बिम्ब जीवन की धड़कन की मानिंद गुनगुनाता सा —

मैंने गीतों के शब्दों का / बिजली से व्याह रचाया है

बदली के हाथ किये पीले /रिमझिम की सेज सुलाया है..

बिम्ब में आश्चर्य रूप से जो प्रयोग है वे विस्मित किए बिना नहीं रहते-

कोई नींद पहन लेता है /मेरी आँखों से लेकर,

कोई पास बुला लेता है /यादों को कंगन देकर।

गीतकार मधुकर जी का अक्खड़पन दीवानगी की हदों को छूता हुआ अपनी बानगी में कह रहा है —

दिवाने आखिर दिवाने /तहज़ीब भला वो क्या जाने

वो शहर का ठेका क्या लेंगे /जो खुद को भी ना पहचाने ...

मुंबई से नवनीत के संपादक श्री विश्वनाथ सचदेव जी का उनके व्यक्तित्व पर यह कथन -- "मधुकर गौड़ खुरदरी सी खुद्दारी वाला व्यक्तित्व है। वे स्पष्टवक्ता हैं, जो मन में आता है, कह देते हैं, मन में कुछ छिपाकर नहीं रखते। जो सही लगता है उसके लिए अड़ जाते हैं, लड़ पड़ते हैं, इसलिए कुछ लोग उन्हें अक्खड़ मानते हैं। मुझे उनका यह अक्खड़पन पसंद है।" ऐसे लगनशील और जिद्दी गीतकार की शब्दावली में वही शोख मिजाज़, वही अक्खड़पन के तेवर इस बिम्ब में भी ज़ाहिर हैं—

मैंने कहाँ हार मानी है / जनम जनम का हूँ मतवाला

अँधियारे ने डर कर शायद / मेरी आँखों को मथ डाला।

एक लेखक का दायित्व किसी एक व्यक्ति समूह, समुदाय तक ही सीमित नहीं होता बल्कि पूरे समाज के प्रति होता है.....!

मधुकर जी ने भी खुद एक जगह लिखा है...

साफ़ लफ़्ज़ों में सदा कहने की आदत है मुझे

आग हूँ मैं धूप को सहने की आदत है मुझे....

वाह ! शिद्दत हो तो ऐसी ! बेधड़क, दबंग तेवर उनके व्यक्तित्व में शामिल हैं।

10 अक्टूबर 1942, चुरू (राजस्थान) में जन्मे पं. मधुकर गौड़ के रचना संसार के विस्तार के लिए यही कहना ठीक होगा- 'sky is the limit.' उनके अब तक के प्रकाशित संग्रह हैं-33 ग्रन्थों से सम्बद्ध, 16 संकलन स्वयं के, एवं 17 ग्रन्थों का सम्पादन। वे राजस्थानी में भी लिखते हैं और राजस्थानी के आठ संकलनों से सम्बद्ध हैं.

उनके कई संकलन जो मेरी लाइब्रेरी की शोभा बढ़ा रहे हैं, वे हैं: अंतस की यादें, गुलाब (मुक्तक, रुबाई, शेर), देश की पुकार(राष्ट्रीय गीत), श्री रामरस (दोहे), सांस-सांस गीत (गीत, दोहे, शेर, मुक्तक), गीत गंगा का नया भगीरथ (सम्पादन: डॉ. रामजी तिवारी), आखर आखर मोल –(सम्पादन: हृदयेश मयंक)। उनके

पास जीवन के विविध प्रकार के अनुभवों का विशाल भंडार है। उनके दोहों की लाक्षणिक और प्रतीकात्मक शैली में वर्तमान जीवन की कुछ कड़ी सचाइयों की झलक दिखाई देती है...

ग्रंथ-गहन कितने पढ़े, दो शब्दों को छोड़

राम ग्रंथ के पृष्ट पर, अपने मन को मोड़

मन सरवर में राम है, मन धारा में राम

जब चाहे तब बोलिए, सुबह रहे या शाम...(रामरस)

*

मुक्तकों में कहीं कहीं सूक्तियों के संकेत मिलता है-

मेरा कफ़न मुझे ही सीना आता है / हर पीड़ा को हंस कर पीना आता है

चाहे कितनी हो मँझधारों में लहरें / तूफानों में मुझको जीना आता है

मधुकर जी राष्ट्रीय स्तर के गीतकारों से जुड़े रहे हैं, उनकी शब्दावली एक मानव की नहीं समस्त राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व करते हुए संकेतों के तीखे स्वरों में कहती है -

अनगिन शहर बसे हैं मुझमें/ अनगिन चेहरों के उसूल है/

कुछ उनमें खिलते गुलाब से/ कुछ तबीयत से ही बबूल है।

श्रद्धेय डॉ. रामजी तिवारी जी की एक समीक्ष्य-कृति: ‘गीत वंश’ का एक अंश है- “वर्तमान परिवेश में व्याप्त भ्रष्ट व्यवस्था और नैतिक मूल्यों का छिछोरापन कवि को पीड़ा प्रदान करता है। कवि को लगता है वर्तमान जनतंत्रीय व्यवस्था में साँपों की सत्ता के नीचे जो दुकानदारियां चल पड़ी हैं, उनमें ईमानदारी की रोशनी का खुलेआम अपहरण हो रहा है और सत्य की निर्मम हत्या हो रही है.”-. जिनके संदर्भ में गौड़ जी लिखते हैं-

जिनसे उम्मीद बांधे हुई थी सदी / वे ही धोखों का लेकर जुलूस आ गए

कुर्सियों की न क़ीमत हुई कम कभी / उनपे उनसे भी बढ़कर मनहूस आ गए।

गीतों में प्रतिबद्धता के लिए उनका अथक सफ़र आगे और आगे जिस तरह क्षितिज की ओर बढ़ता चला जा रहा है, मैं यही कह सकती हूँ कि रब करे उनकी क़लम ज़ोर और पुरज़ोर अभिवयक्ति का मधायम बने। कुंते जी के शब्द गूज़ बनकर यादों में प्रतिध्वनित होकर जैसे कह रहे हों...

मैं तो दरिया हूँ मुझे अपना हुनर मालूम है

मैं जिधर भी जाऊंगा, रास्ता बन जाएगा !

सरल शब्दों में गूढ से गूढ़तम भावानुभूतियों को सहजता से काव्य-भाषा में प्रस्तुत करना मधुकर जी की विशिष्टता है। उनके गीतों के विस्तार से उनकी प्रतिबद्धता न केवल गीतों में परिलक्षित होती है, अपितु उनके स्वभाव का अभिन्न अंग बनी दिखाई देती है। एक तरह से वे गीतमय हो चुके हैं, गीत गाते हैं, गीत ओढ़ते हैं, गीत बिछाते हैं। गीतों की शब्दावली उनके जिये हुए पलों का यथार्थ है।—

शब्दों को गली गली बेचा / गीतों का मान बदल डाला

झुक झुक कर गरिमाएँ बेचीं/ सारा सम्मान बदल डाला।

गीत के लिए राग और अनुराग का काव्यात्मक एवं कलात्मक सहयोग परम आवश्यक है, जो उनके गीतों की लय ताल में पाया जाता है। मधुकर जी से जुड़ना मतलब है समस्त गीत परंपरा से जुड़ना। वे स्तरीय साहित्य-चेतना की मशाल जलाए रखने वाले साहित्य के अजय-योद्धा हैं जो केवल गीत ही नहीं समूची कविता के अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। उनके स्वर आज राष्ट्रीय स्तर पर गूंज रहे हैं।

'गीत गंगा' के संदर्भ में अहमदाबाद के श्री भगवत प्रसाद मिश्र नियाज़ जी ने समीक्षा लिखते हुए कहा है- 'ऐसे समर्थ गीतकार की कृति की समीक्षा लिखना तलवार की धार पर चलने के समान है। 'गीत गंगा एक भगीरथ' एक संदर्भ ग्रंथ है जो हर घर में गीता की तरह अपने शब्दों की झनकार और सुरमई संगीतमय धारा बनकर कल कल बह रहा है।

उनके बेबाकी की बेमिसाली का एक मिसाल इन शब्दों में करवटें ले रहा है.....ज़रा देखें, सुनें, महसूस करें.....

एक अगन ले घूम रहा हूँ / एक तपन मेरी साथी

स्वयं पीर से व्याह रचाया / बिना तेल जलती बाती

जन को जन के साथ, दम को दम के साथ जोड़ने का यह सार्थक प्रयास संजीवनी से कम नहीं। डॉ. राधेश्याम शुक्ल की ये पंक्तियाँ विचारों के मंथनोपरांत गीत के प्रति अपनी मान्यता को सामने रखते हुए कह रहे हैं--

अनसुनी रह गई राग की बांसुरी /अनछुई रह गई फूल की पांखुरी

बेतुके शोर के लोग आदी हुए/ हो विरस खो गई गीत की माधुरी

यह है गीत के प्रति उनकी निष्ठावान सोच, जो गीत के जटिल से जटिल कथ्य को सहज संवेद्ध बना देती है। यही गीत की परम्परा है, यही उसकी व्यापकता है !

संपादक के रूप में गीत की प्रस्तुति में मधुकर जी अपनी एक अलग पहचान रखते हैं। ये कहने में अतिशयोक्ति न होगी कि वे सम्पादन की कुशलता में रचनाओं का चयन भी उल्लेखनीय है। पत्रिका के माध्यम से आप एक सारस्वत यज्ञ करते चले आए हैं। छंद को समर्पित हिन्दी जगत की चर्चित साहित्यिक पत्रिका 'सार्थक' में मधुकर गौड़ के प्रकाशित कुछ विशिष्ट संपादकीय हमें उनकी विचार धारा से परिचित कराते हैं-जहां देखने में आता है कि वे बिना भेद भाव के स्तरीय रचनाओं को प्रस्तुत करते आए हैं। नाम से अधिक उन्होने रचनाओं को ही अधिक महत्व दिया है। मधुकर गौड़ को प्राप्त सम्मान एवं उपाधियों की सूची में कुछ खास खास उपलब्धियों का ज़िक्र यहाँ करूंगी जो उन्हें हासिल हुई हैं- श्रीमति प्रतिभा सिंह पाटिल राज्यमंत्री महाराष्ट्र राज्य द्वारा " श्रेष्ठ साहित्यकार सम्मान", काव्य पर सर्वोच पुरुसकार-'संतनाम देव', श्रेष्ठ साहित्य सेवा सम्मान (हिसार), "गीत श्री" सम्मान(म. प्र.), "श्रेष्ठ साहित्यकार सम्मान" (राजस्थान), "साहित्य श्री" (राजस्थान), सृजन सम्मान" (रायपुर), "साहित्य-सरस्वत सम्मान" प्रयाग, "निराला सम्मान " (हैदराबाद),"विशिष्ट साहित्य सम्मान" उदयपुर, सर्वोच्च गीति सम्मान" मुरादाबाद, "गौरी शंकर कमलेश स्मृति सृजन सम्मान" (कोटा)। आपके साहित्य पर अब तक चार शोध हुए हैं।

उनके साहित्य के सफ़र में हमसफ़र, कुछ देर ही क्यों न सही, कुछ पल ही क्यों न हों, गीत-गंगोत्री में डुबकी लगाने के इस प्रयास में मुझे श्री भगवत प्रसाद मिश्र नियाज़ जी के शब्द याद आ रहे हैं- 'ऐसे समर्थ गीतकार की कृति की समीक्षा लिखना तलवार की धार पर चलने के समान है।" मुझे भी यही कहना है –पढ़कर गीतों को लगा, जैसे गीता सार

मधुकर जी को वंदना 'देवी' की हर बार.

जय हिन्द!

समीक्षक :देवी नागरानी, dnangrani@gmail.com

मुखपृष्ठ

6

प्राण शर्मा जी के "व्यक्तित्व के आइने से झांकती जीवन और परिवेश की झलकियाँ"

देवी नागरानी

प्राण शर्मा हिंदी के लोकप्रिय कवि और लेखक हैं . उन्होंने देश-विदेश के पनपे कई शायरों को क़लम माँजने की कला सिखाई है . वे फ़िल्मी गीत गाते - गाते कवि बने और युवावस्था तक पहुँचते- पहुँचते उन्होंने छंद -शास्त्र का अच्छा अध्ययन कर लिया था . उनके प्रारम्भिक उल्लेखनीय लेखन के बारे में मूर्धन्य लेखक डा: गंगा प्रसाद विमल लिखते हैं - " कवि प्राण शर्मा हिंदी गीत एवम ग़ज़ल के भारतेतेर हस्ताक्षरों में अग्रणी कहें जायेंगे क्योंकि बरसों से वे भारत से बाहर हैं और यू. के. में बस गये हैं . 1964 - 1965 में जब वे अभी भारत में थे और हिंदी के प्राध्यापक थे , उनके गीतों और ग़ज़लों की धूम थी . हम लोग साथ-साथ विश्वविद्यालय में पढ़ते थे और हर नए लेखन के बारे में हम लोगों में एक ज़बरदस्त आकर्षण था .फलत: विश्वविद्यालय के अध्ययन के दौरान हम लोगों के बीच अवधि बहसें जारी रहती थी . उन दिनों प्राण शर्मा हिंदी फिल्म गीतों के ज़रिये कुछ कर गुजरने की महत्त्वाकांक्षा पाले हुए थे. मित्र मंडली में अधिकाँश लोग नए साहित्य के रसिक थे और शास्त्रीय लेखन के आलोचक थे परन्तु प्राण शर्मा की छंदोंबद्ध रचनाएं हमारे बीच में वैसे ही प्रतिष्ठित थीं जैसा नया साहित्य था . इसका मुख्य कारण यह था कि प्राण शर्मा शास्त्रीय प्रणाली से आधुनिक जीवन की वस्तु रूपात्परित बनाये रखने में सफल थे ."

क़लम एक अद्भुत हथियार है, एक ताक़त, एक हौसला, एक जीवन संचार का माध्यम जिसमें रचनाकार अपनी कलात्मक सोच के ताने-बाने से शब्द-शिल्पी की तरह बुनकर, तराश कर मूर्तिस्वरूप शब्दों में ढालकर अपनी रचना को आकार देता है. किसी ने सच कहा है "अच्छी कविता के भीतर कंगारू के पेट की तरह एक और कविता छुपी होती है तिलिस्म की तरह जो अपने आप में अलग और पूरे व्यक्तित्व के साथ भी गढ़ रही होती है. यदि हम

उसे देखना चाहें तो कई-कई बार पूरी किताब से, कभी-कभी एक अंश या पंक्ति पढ़ने से सारा का सारा ज्ञानार्थ समझ जाते हैं और इसी सच का निचोड़ एक बेशक़ीमत नगीनेदारी से रचे शेर को पढ़कर महसूस किया जाता है". अपने वजूद से जुड़कर एक परम सच से साक्षातकार होने के बाद जीने मरने का अंतर ही मिट जाता है, जिसके बाद कुछ और खोजने की और पाने की ललक बाक़ी नहीं रहती. भावों का पारदर्शी पहलू श्री प्राण जी के इस शेर में टटोलें और महसूस करें...

सोच की भट्टी में सौ-सौ बार दहता है

तब कहीं जाके कोई इक शेर बनता है

काव्यानुभव में ढलने के लिये रचनाकार को जीवन पथ पर उम्र के मौसमों से गुज़रना होता है और जो अनुभव हासिल होते है उनकी प्राण जी के पास कोई कमी नहीं है. जिंदगी की हर राह पर जो देखा, जाना, पहचाना, महसूस किया, उसे परख कर सरल शब्दों में बुनकर प्रस्तुत किया है. इस कला के निपुण धनी जाने-माने वरिष्ठ शायर प्राण शर्मा जिन्होंने अपने पहले ग़ज़ल संग्रह "ग़ज़ल कहता हूँ" के आरम्भ में एक शेर में जो लिखा है -------

"ग़ज़ल कहता हूँ तेरा ध्यान करके

यही ए प्राण अपनी आरती है."

इसे पढ़ कर सोच भी यही सोचती है कि किस ज़मीन की बुनियाद पर इन शब्दों की शिला टिकी होगी, किस विचार के उत्पन होने से, उसके न होने तक का फासला तय हुआ होगा. अद्भुत, सुंदरता की चरम सीमा को छूता हुआ एक सच. यही भावार्थ लेकर एक शेर श्री गणेश बिहारी तर्ज़ जी की गज़ल का इसी बात की सहमति दे रहा है...

"एक आसमान जिस्म के अंदर भी है

तुम बीच से हटों तो नज़ारा दिखाई दे."

एक हद तक यह ठीक भी है. शिल्पकारी में भी कम मेहनत नहीं करनी पड़ती है. प्रसिद्ध गज़लकार डा. कुँवर बेचैन ने प्राण शर्मा की ग़ज़लों को एक नए अंदाज़ से पढ़ा, देखा और पेश किया है .प्राण शर्मा की भाषा, शैली और शिल्प से वे अत्यधिक प्रभावित हैं. बाल स्वरुप राही भी प्राण शर्मा के सम्बन्ध में कहते हैं -"विदेशों में बसे ग़ज़ल के बेशुमार ग़ज़लकारों में जनाब प्राण शर्मा का मुकाम बहुत ऊँचा है. उनके शेरों में ग़ज़ल की चासनी तो है ही, अनुभवों की ताज़गी भी है."

छोटे बहर में बड़ी से बड़ी बात कहना इतना आसान नहीं. ग़ज़ल लिखना एक क्रिया है, एक अनुभूति है, एक शिल्पकला है जो ह्रदय में पनपते हुए हर भाव के आधार पर टिकी होती है. एक सत्य यह भी है कि यह हर इन्सान की पूंजी है, शायद इसलिये कि हर बशर में एक कलाकार, एक चित्रकार, शिल्पकार एवं एक कवि छुपा हुआ होता है. किसी न किसी माध्यम द्वारा सभी अपनी भावनाएं प्रकट करते हैं, पर स्वरूप सब का अलग अलग होता है. एक शिल्पकार पत्थरों को तराश कर एक स्वरूप बनाता है जो उसकी कल्पना को साकार करता है, चित्रकार तूलिका पर रंगों के माध्यम से अपने सपने साकार करता है और एक कवि अपनी सोच को शब्दों के आधार पर जब अभिव्यक्ति करता है वह कविता का रूप ले लेती है. प्रवाह तथा प्रभाव दोनों ही द्रष्टियों से प्राण शर्मा की सोच में विस्तार है, वे बख़ूबी थोड़े ही पुष्पों से विशाल कक्ष को सजा देते हैं. सच तो यह है कि उनकी ग़ज़लें अभिव्यक्ति की द्रष्टी से विशेष और अनूठी हैं. उनकी इस कला का नमूना देखिये --

झोंपड़ी की बात मत करिए अभी

भूखे के मुँह में निवाला चाहिए

कविता व्यक्तित्व का आइना है जिसमें से जीवन और परिवेश की झलकियाँ झांकती है . जीवन के पल पल की कोमल भावनाएं, कठोर कड़वी सच्चाइयाँ साहित्य सरिता के रूप में, संवेदनशील हृदय से विस्फोटित होकर प्रशांत नदी की तरह समतल भूमि से बहती धाराओं की तरह सरगोशियाँ करती हुई बहुत कुछ अपनी खामोश ज़बां से कह जाती है. किसी ने खूब कहा है " ग़ज़ल एक सहराई (मरुस्थली) पौधे की तरह है जो पानी की कमी के बावजूद अपना विकास जारी रखता है." इसी सच का निर्वाह और निबाह किया है क़लम के सिपाही श्री प्राण शर्मा जी ने, जिनकी शायरी के अनंत विस्तार से मैं मुख़ातिब हुई हूँ. उनकी व्यक्तित्व और शख्सियत पर क़लम चलाना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है, ऊंच्चाइयों के सामने बौनेपन का अहसास लाज़मी है! गागर में सागर समोहित करने की इस अदाइगी से प्रभावित होना लाज़मी है. इसी संदर्भ में मुंबई के प्रख़्यात शायर **श्री नँदलाल पाठक जी** का शेर उनकी ज़बानी क्या कहता हैं आप भी सुनें..

यूँ तो हूँ खुद बेठिकाना, मेरा दिल है घर खुदा का

मेरी आँखों में समंदर मैं ज़रा सा बुलबुला हूँ

ग़ज़ल के शास्र की अनगिनत बारीकियों को प्राण शर्मा जी अपने ही अंदाज़ में बयाँ करते हुए कहते हैं- "अच्छे शेर सहज भाव, स्पष्ट भाषा और उपयुक्त छंद के सम्मिलन का नाम है. एक ही कमी से वह रसहीन और बेमानी हो जाता है. भवन के अंदर की भव्यता बाहर से दिख जाती है. जिस तरह करीने से ईंट पर ईंट लगाना निपुण राजगीर के कौशल का परिचायक होता है, उसी तरह शेर में विचार को शब्द सौंदर्य तथा कथ्य का माधुर्य प्रदान करना अच्छे कवि की उपलब्धि को दर्शाता है." इन शेरों के इज़हार में वही शब्द सौंदर्य तथा कथ्य का माधुर्य पाया जाता है...

रो रहे हैं आप क्योंकि आपका घर जल गया

तब कहाँ थे आप जब बस्ती के थे कुछ घर जले

इतना भी नादाँ किसीको समझिये मत साहिबो
हर किसी में होती हैं थोड़ी-बहुत चतुराइयां

प्राण जी की गज़लें मानवीयता संवेदना से भी ओतप्रोत हिंदी मुहावरे के अधिक समीप हैं.

ख़ुशबुओं को मेरे घर में छोड़ जाना आपका
कितना अच्छा लगता है हर रोज़ आना आपका

मात्र भाषा की सरसता, सरलता एवं निष्कपटता के कारण वे सहृदय के दिल में उतरती जाती है और अपना गहन प्रभाव छोड़ती हैं, यही तासीर उनकी लेखनी मे पाई जाती है...

मान लेता हूँ चलो मैं बात हर इक आपकी
कुछ अजब सा लगता है सौगन्ध खाना आपका

शायरी फ़क़त सोच की उपज नहीं, एक कला है. वेदना की गहन अनुभूति के क्षणों में जब रचनाकार शब्द- शिल्पी बनकर पत्थर तराशते हैं तो शिलाएं भी बोल पड़ती हैं. उसी करीने की मिसाल इन शेरों में पाई जाती हैं.....

कितने हो नादान तुम पतझड़ के आ जाने के बाद

ढूंढते हो खुशबुओं को फूल मुरझाने के बाद

प्राण जी की गज़लें परिवेश, अपनी धरती और विशेष रूप से घर परिवार से जुड़ी हुई हैं. अपनी ज़मीन से जुदा होने

का ग़म क्या होता है, वह पीड़ा जो धमनियों में संचार करती है, वह क्या होती है, यह उनसे पूछें जो जड़ से जुदा होकर दर-ब-दर हुए हैं. ...

"प्राण" दुःख आये भली ही ज़िन्दगी में

उम्र भर डेरा न डाले सोचता हूँ

धूप में तपते हुए, ए प्राण मौसम में

सूख जाता है समन्दर, कौन कहता है

ऐसी ही प्रसव पीड़ा की गहराई और गीराई उनकी इस रचना में महसूस की जाती है जब देश के बाहर रहने वाले सहित्यकार को प्रवासी के नाम से अलंक्रित किया जाता है. क्या कभी अपनी मात्र भाषा भी पराई हुई है? कभी शब्दावली अपरीचित हुई है? इस वेदना को शब्दों का पैरहन पहनाते हुए वे भारत माँ की सन्तान को निम्मलिखित कविता में एक संदेश दे रहे है....

साहित्य के उपासको, ए सच्चे साधको

कविता - कथा को तुमने प्रवासी बना दिया
मुझको लगा कि ज्यों इन्हें दासी बना दिया
ये लफ्ज़ किसी और अदब में कहीं नहीं
इसका नहीं है आसमां , इसकी ज़मीं नहीं
मुझको हमेशा कह लो प्रवासी भले ही तुम
कविता को या कथा को प्रवासी नहीं कहो
साहित्य के उपासको, ए सच्चे साधको

कविता को या कथा को प्रवासी नहीं कहो

उनकी कविताएं और ग़ज़लें जहाँ शिल्प की दृष्टि से कलात्मक बन पड़ी है वहीँ कथ्य की दृष्टि से सजीव है. मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से जुड़े अनुभव, अनुभूतियों एवं जीवन-मूल्यों को प्राण जी ने विषय-वस्तु बनाया है. ग़ज़ल सिन्फ अदब का आइना है जिसमें सामाजिक सरोकारों को साफ़-साफ़ देखा जा सकता है. चाहे वह मुहब्बत हो या आर्थिक एवं समसामयिक विषय या भ्रष्टाचार, राजनीति व् सियासत हो. समस्या और समाधान, दोनों की ओर इशारा करते हुए उनके अश्यार अपनी करनी के मार्ग पर क़दम आगे और आगे बढ़ाते चले जा रहे हैं...

किसी अमीर से पूछा तो तुमने क्या पूछा

किसी ग़रीब से पूछो कि ज़िन्दगी क्या है

आज की क्रत्रिम दुनिया में जहाँ झूठ- सच में अंतर मिटता चला जा रहा है, दिल दिमाग़ में तकरार पैदा हो रहा है, वहीँ सामाजिक सरोकारों को एक दशा और दिशा प्रदान करने के लिए क़लमकार का दायित्व बन जाता है कि वह समाज की विसंगतियों, कुनीतियों, न्याय- अन्याय के अंतर में छुपी कुनीत राजनीती को सकारात्मक जीवन मूल्यों के साथ उजगार और विकसित करे. इस दिशा में प्राण जी का कथन कहाँ तक सफ़र में हमसफ़र रहा है पाठक ख़ुद परखें...

आप पत्थर से करें या ईंट से

दोस्तो, आघात तो आघात है

इतना भी नादाँ किसीको समझिये मत साहिबो
हर किसी में होती हैं थोड़ी-बहुत चतुराइयां

और यह मिसाल देखें..अद्भुत व बेमिसाल, उनके लेखन कला का प्रतीक.....

"प्राण" जरूरत थी पानी की जब धरती पर सूखा था

उस पानी से क्या लेना जो पानी बरसा पानी पर

उनकी शैली और चिंतन-मनन के विस्तार से परिचित कराते हुए प्राण जी के शेर हमें इस क़दर अपने विश्वास में लेते हैं कि हमें यकीन करना पड़ता है कि उनकी शाइरी का रंग आने वाली नवोदित कवियों की राहों में सोच के उजाले भर देगा. लहज़े में सादगी, ख्याल में संजीदगी और सच्चाइयों के सामने आइना बनकर रच्नात्मक अभिव्यक्ति सामने आईं हैं . हर राज़ का पर्दा फाश करते हुए प्राण जी के शेर अब काफ़िलों के सिलसिले बन रहे है जो बिना आहट, चुपचाप सफ़र तय करते हुए एक पैग़ाम की मानिंद अपने मन के गुलशन में उमड़ते हुए भारतीयता के सभी रंग, वहाँ की सभ्यता, संस्कृति, तीज- त्यौहार, परिवेश, परंपराओं की जलतरंग से हमारी पहचान कराते चले जा रहे हैं. और यह मिसाल देखें, अद्भुत व बेमिसाल...

हम भी थे अनजान माना आदमियत से मगर

आदमी हमको बनाया आदमी के प्यार ने.

सरल सहज भाषा में कहीं भटके हुए पथिक का मर्गदर्शक बनती हुई उनकी शैली अपना परिचय ख़ुद देती है. आदमी की ख़ुशफ़हमी, ख़ुदबयानी बन गई है. तारीफ़ किसे नहीं भाती, इसी ओर इशारा करते हुए उनकी बानगी देखें...

जग में मुरीद अपना बनाता किसे नहीं
फ़नकार अपने फ़न से रिझाता किसे नहीं

हमने सुनाई आपको तो क्या बुरा किया
हर शख़्स अपनी ख़ूबी सुनाता किसे नहीं

रिशतों के मर्म और महत्व को एक एक शेर में पिरोने के अद्भुत कौशल के शब्द शिल्पकार प्राण जी ने कथ्य की द्रष्टि से कुछ नये अयामों को छुआ है. जीवन की सच्चाइयों से वाक़िफ़ करते हुए उनकी अभिव्यक्ति अपना परिचय ख़ुद देती है. रिश्तों की महत्वता मान्यता से होती है, जहाँ घर है वहीं रिश्ते बुने जाते है अहसासों के तिनकों से, पसीने की महक से, तभी जाकर एक अपनाइयत की आँच दुख-सुख में साँझी बन जाती है.

याद आती रहे बुज़ुर्गों की
खानदानी मकान क्यों न रहे

माना कि होनहार है हर बात में मगर
दुनिया के इल्म में अभी बच्चा है आदमी

रिश्तों के इस विशाल सागर में एक अंचुरी मेरी भी उस जलतरंग का हिस्सा बनना चाहती है

रिश्ता देवी वही निभाएगा

जिसको रिश्ता समझ में आया है...

आपके द्वारा लिखा गया **"हिंदी ग़ज़ल बनाम उर्दू ग़ज़ल"** धारावाहिक रूप में हमारे सामने आता रहा और पथ दर्शक बन कर वह कई ग़ज़ल विधा की बारीकियों पर रोशनी डालते हुए बड़ा ही कारगर सिद्ध हुआ है. उसी के एक अंश में आइये सुनें वो ग़ज़ल के बारे में क्या कहते हैं -"अच्छी ग़ज़ल की कुछ विशेषताएं होती हैं. इन पर समय के साथ के चलते हुए विशेषग्यता हासिल की जाये तो उम्दा ग़ज़ल कही जा सकती है. साथ ही इनका अभाव हो तो ग़ज़ल अपना प्रभाव खो देती है या ज़्यादा लोकप्रिय नहीं हो पाती. सरल, सुगम एवं कर्णप्रिय शब्दों में यदि हिंदी ग़ज़ल लिखी जायेगी तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता कि वह जन मानस को न मथ सकें. यदि ग़ज़ल में सर्वसाधारण के समझ में आने वाली कर्ण प्रिय मधुर शब्द आएंगे तो वह न केवल अपनी भीनी- भीनी सुगंध से जनमानस को महकाएगी बल्कि अपनी अलग पहचान बनायेगी. हिंदी ग़ज़ल को लोकप्रिय बनाने के लिये उसको बोलचाल या देशज शब्दावली को चुनना होगा, जटिल ग़ज़ल की वकालत को छोड़ना होगा."

यही एकमात्र कारण है कि प्राण जी की भाषा का लबो लहज़ा रोज़मर्रा की बोलचाल की भाषा में अपनी सरलता से जीवन के मनोभावों को अभिव्यक्त करते हूए सब कुछ कह जाने में प्रवीण है. वरिष्ट ग़ज़लकार डा. श्याम निर्मम ने भी उसी ओर संकेत करते हुए लिखा हैं - " प्राण शर्मा जी की शायरी में भाषा,शिल्प और कथ्य के स्तर पर अनेक नवीनताएँ भी उद्भासित होती हैं, जो आज की ग़ज़ल के तेवर और आने वाले समय में विधागत उन सच्चाईयों की ओर भी इंगित करती हैं जिनसे मनुष्य का सीधे-सीधे आमना- सामना होना तय है." ग़ज़लों के माध्यम से प्राण शर्मा जी ने तकरीबन जीवन के हर पक्ष को छुआ है. मसलन- जिन्दगी, आदमी, बचपन, बुढ़ापा, मौत इत्यादि. सच में उनके कई शेर तो सूक्ति की तरह लगते हैं. आप भी पढ़कर परखिये उनकी रचनात्मक परिधी की सीमाएं...

माना कि आदमी को हँसाता है आदमी

इतना नहीं कि जितना रुलाता है आदमी (आदमी)

दिल को अदा से अपनी लुभाती है जवानी

कुछ ऐसे कई चाँद लगाती है जवानी

ए "प्राण" इसे कोई गुस्सा न दिलाओ

जीवन में घनी आग लगाती है जवानी (जवानी)

बचपन तुझको, मुझको, सबको प्यारा लगता है

बचपन पावन गंगा का ही धारा लगता है

रूप सलोना इसका जादू क्यों न लगे मन को

बचपन चढ़ते सूरज का उजियारा लगता है (बचपन)

बच्चों की खुशी उसके लिए सबसे बड़ी है

उनकी खुशी में खुशियाँ मनाता है बुढापा

औलाद का दुःख - दर्द न देखे वो तो अच्छा

अपने को कई रोग लगाता है बुढापा (बुढापा)

मन की बात, हर हालात, हर दौर का पहलू, इतनी साफ़गोई से इज़हार करना सोच और शब्द का एक सशक्त संगम है, जहाँ शब्दों का रख-रखाव अपनी स्पष्टता के बल पर अपनी बात कह जाने में समर्थ है. बस कुछ याद रह जाये इस याद के गलियारे से जहाँ से गुज़रते हुए मानवता की यह ख़ुश्बू साथ रहे.

यूँ तो किसी को भूलना आसाँ नहीं मगर
एहसान फ़रामोश भुलाता किसे नहीं.

जब तक प्राण शर्मा की " सुराही " के मुक्तकों का जिक्र न हो तो तब तक यह लेख अधूरा है . "सुराही" उनकी उल्लेखनीय कृति है. मधुशाला , मधुबाला और मधु के माध्यम से उन्होंने अद्‌वितीय मुक्तकों का सृजन किया है . प्रसिद्‌ध कहानीकार और कवि गंगा प्रसाद विमल का कथन है - " सुराही , सुर प्रदेश के आही जनों के भव्य आयोजनों के आदि सूक्तों की तरह है. कविता के नये प्रयोगों के रूप में यह काव्य पिछले अनेक प्रयोगों से भिन्न है ."

रामजी पाण्डेय सुराही के बारे में लिखते हैं -" कवि के भावनाओं की , विचारों की और आध्यात्मिक पहुँच की जितनी ही प्रशंसा की जाए कम है .कवि की मानवीय संवेदनशीलता और जीवन के मर्म को छूने की कला विलक्षण प्रतिभा है ." राम कृष्ण पाराशर तो सुराही के मुक्तकों की पठनीयता के सम्बन्ध में यहाँ तक लिखते हैं - " सुराही के मधुमयी मुक्तक ` वाक्यं रसात्मकं काव्यम " को चरितार्थ करते हुए मन को भरपूर छूते हैं . उनकी छटा निराली है , मंत्रमुग्ध करने वाली है . सुरा , सुराही और साकी के माध्यम से जीवन के विविध पक्षों की जन साधारण की भाषा में उजागर करना प्राण शर्मा की महान उपलब्धि है . सुराही को जितनी बार मैंने पढ़ा है यह रोटी जिधर से तोडी है, मीठी ही लगी है." " सुराही " के कुछेक मुक्तकों की छटा देखिये -

जी करता है, सदा रहूँ टेरे साकी को
यारो , मैं हर वक़्त रहूँ घेरे साकी को
इसीलिए आ जाता हूँ मैं मयखाने से
ताकि मिले आराम ज़रा मेरे साकी को

गूँज छलक जाते प्यालों की मतवाली है
मयखाने में खुशहाली ही खुशहाली है
साकी , तेरा मयखाना है या है ज़न्नत
हर पीने वाले के चेहरे पर लाली है

निर्णय कर बैठेगा तुझको ठुकराने का
अवसर खो बैठेगा तू मदिरा पाने का
बैठ सलीके से ए प्यारे वरना तुझको
रस्ता दिखला देगा साकी घर जाने का

बीवी , बच्चों पर जो घात किया करता है
पल - पल गुस्से की बरसात किया करता है
दोस्त , समझना उसे कभी मत मधु का प्रेमी

पीकर घर में जो उत्पात किया करता है

प्रस्तुतकर्ताः देवी नागरानी, NJ, dnangrani@gmail.com

मुखपृष्ठ

7

प्रेमचंद गंगा के भागीरथः कमल किशोर गोयनका

प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययनः

देवी नागरानी

प्रखर उपन्यास-सम्राट श्री प्रेमचंद जी ने खुद भी कहा है : 'व्यक्ति की बुद्धि और उसकी भावनाओं को प्रभावित करनेवाली रचना को ही साहित्य कहते हैं' वे आगे कहते हैं 'जिस रचना में साहित्य का उद्घाटन हो, जिसकी भाषा प्रौढ़ एवं परिमार्जित एवं सुंदर हो, जिस में दिल और दिमाग़ पर असर डालने का गुण हो, जिस में जीवन की सच्चाइयाँ व्यक्त की गई हों वही साहित्य है।'

कोई भी रचनाकार समय और समाज से निरपेक्ष होकर लेखन को अंजाम तलक पहुंचा ही नहीं सकता। काल और परिवेश का सूक्ष्म पारखी ही जीवंत रचनाओं को जन्म दे सकता है, क्योंकि रचना का जन्म शून्य से नहीं हुआ करता, अपितु सृजन के गर्भ से सृष्टा का वैयक्तिक एवं सामाजिक परिवेश से हुआ करता है। जब वैयक्तिक वेदनाएँ लेखनी को माध्यम बनाकर समूचे वर्ग की वेदनाएँ बन जाती हैं तो महान रचना का जन्म होता है। और इस प्रकार अभिव्यक्ति की व्यापकता रचना की ख्याति का सबब बनकर उसे कालजयी बना देती है।

एक ऐसी ही कालजयी कृति है "प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन" जिसके के

सृजनहार श्री कमल किशोर गोयनका जी हैं। उनके साहित्य के क्षितिज का विस्तार आज जिस फ़लक को छू रहा है वह यही प्रमाणित करता है कि वे एक ऐसे आलोचक और शोधकर्मी हैं जो देश-विदेश में रचे जा रहे हिन्दी साहित्य को गंभीरता से लेते हैं, और साहित्य की नई प्रवृत्ति की दिशा में कुछ मान्यताएँ, कुछ शंकायें, कुछ समाधान जो उन्होंने अपनी क़लम की धारधार अभिव्यक्ति से, अनेकों साक्षात्कारों व बातचीत के दौरान विस्तार से खुलासा किये हैं, जिनको पढ़ते हुए जाना जाता है कि उनका लगाव हिन्दी के साहित्य के प्रति साधना बन गया है। इसी राह की विडंबनाएँ, अड़चनाएँ, उपेक्षाएँ अनेकों पड़ावों पर साहित्य का मूल्याँकन करने वालों की विचारधाराओं के रूप में सामने आई होंगी, उन्हें भी एक पड़ाव समझ के पार करते हुए उन्होंने अपनी विचारात्मक सोच-समझ, गहरे अध्ययन से एक रचना संसार का सृजन किया है। हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार तथा प्रतिष्ठा के लिये यह प्रोत्साहन का कार्य वह क़ाबिले-तारीफ़ है।

डॉ॰ बाल कृष्ण पांडेय जी का सिद्धांत : "लेखक का व्यक्तिगत जीवन उसकी विचार प्रतिकृया के निर्माण का हेतु होता है, क्योंकि लेखक का व्यक्तित्व ही विचारों का उदभावक होता है। इसलिए व्यक्तित्व के निर्माण से ही विचारों का निर्माण होता है।" वैसे भी किसी लेखक को जानना-पहचाना अति कठिन होता है। फिर भी पठनीयता के आधार पर उनकी हस्ताक्षर रचनाओं से वाक़िफ़ होकर यही जाना जाता है कि रचनाकर अपनी रचना से दूर नहीं। उनकी रचनात्मक दुनिया उनके विचारों का परिचायक बनती है, या यूं कहें विचार प्रतिकृया का प्रतिफलन ही रचना है। रचना ही विचारों की संवाहिका होती है, लेकिन लेखक अपनी विचार प्रतिक्रिया ही रचना में ढालता है, इसलिए रचना विचाराभिव्यक्ति का साधन है।

यही साधन साधना की हद से सरहदों को किस तरह छू पता है, यह तब जाना जब श्री कमल किशोर गोयनका जी का शोध-ग्रंथ नुमां संग्रह "प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन" हाथ में आया और मेरी पठनीयता मुझे इस प्रेममय कृति में कुछ यूं धँसने पर मजबूर करती रही कि मैं अपने कुछ विचार अभिव्यक्त करने से बाज़ न आ सकी।

प्रेमचंद साहित्य के अध्येता-डॉ॰ कमल किशोर गोयनका के रचयित 757 पन्नों वाले इस प्रेमचंद शास्त्र को पढ़ते हुए एक बात निश्चित रूप से सामने आई कि उनकी रचनात्मक शिराओं में प्रेमचंद कुछ यूं रच बस गए हैं कि उन्होंने प्रेमचंद के जीवन, परिवेश, व साहित्य में धँसकर जिस साहित्य का सृजन किया है, वही उनके रचनधर्मिता की प्रामाणिकता है जो उन्हें प्रेमचंद स्कालर और प्रेमचंद विशेषज्ञ के नाम से एक अलग पहचान से अलंकृत करने से नहीं चूकी। यह हिन्दी में एक अनूठे ढंग का प्रयास है और भविष्य में मील का पत्थर माना जाएगा। यही नहीं इससे प्रेरणा पाकर कुछ और अन्वेषणकर्ता इस प्रकार के कार्य शुरू करेंगे, और हिन्दी में अन्य यशस्वी कवि-लेखकों के विश्वकोश के निर्माण -कार्य से संलग्न होंगे।

इस ग्रंथ के अन्त में परिशिष्ठ-ग के अंतर्गत लिखी प्रेमचंद की 26 पुस्तकों की, अन्य साहित्यकारों पर 17 पुस्तकें, हिन्दी के प्रवासी साहित्य पर 6 संग्रहों की सूची दर्ज है। हिन्दी साहित्य जगत में इन कृतियों की संपन्नता उनकी अक्षय कीर्ति की आधार शिला है और रहेगी।
प्रेमचंद की कहानियों के इस कालक्रमानुसार अध्ययन को आठ अध्यायों में विभाजित किया गया है।

अध्याय: एक- प्रेमचंद : कहानीकार का इतिहास, कहानी की स्थिति, कहानियों की संख्या और हिन्दी-उर्दू-कहानी संग्रह
अध्याय: दो- प्रेमचंद की कालक्रमानुसार सूचि
अध्याय: तीन- प्रेमचंद का कहानी दर्शन
अध्याय: चार- प्रथम दशक (1908-1910)
अध्याय: पाँच- द्वातीय दशक (1911-1920)
अध्याय: छः - तृतीय दशक (1921- 1930)
अध्याय: सात- चतुर्थ दशक (1931-1936)
अध्याय: आठ -उपसंहार
बावजूद इसके परिशिष्ठ क, ख, ग, में प्रेमचंद की कहानी सौत' की मूल पाण्डुलिपि, कुछ कहानियों की अंग्रेज़ी रूपरेखाएँ, व कमल किशोर गोयनका की प्रकाशित पुस्तकों की सूची शामिल है।

इसी संदर्भ में श्री भारकुस ओरिधियस का कथन है "मनुष्य का जीवन उसकी वैचारिकता और मानसिकता पर निर्भर करता है"। सच ही है, जब किसी रचनाकार की साहित्य रुचि किसी एक खास विधा में हो और वह उसके लिये जुस्तजू बन जाये तो वहाँ लेखन कला साधना स्वरूप सी हो जाती है. ऐसी ही स्थिती में अगर लक्ष्य भी एकलव्य की तरह निशाना साधे हुए हृदय बुद्धि-चाक पर कसा हुआ हो तो यक़ीनन अनुभूतियों के विस्फोट को वाणी मिल जाती है।

इसी परिभाषा में एक और कड़ी डॉ॰ श्याम सिंह 'शशि' जी ने उनकी अपनी कृति 'सागरमाथा' में जोड़ते हुए लिखा हैं -"जो साहित्य देश-समाज तथा समूची मानवता को कुछ नहीं देता, उसका सृजन करके कागज़ काले-पीले करने का कोई अर्थ नहीं।" अब यह गणित जोड़ना कि गोयनका जी ने अपनी सृजनात्मक संसार में कितना किसपर लिखा, कितना उनपर लिखा गया है कहना बहुत कठिन है।

ऐसी ही कालजयी कृतियों के सृजन हार के रूप में कमल किशोर जी को जानना, पहचानना रेत के कणों में से एक सुई को तलाशना है। उनके जीवन से पाठक के रूप में मैं बहुत ज़्यादा परिचित नहीं, फिर भी अनुमान लगाया जा सकता है कि कोई कलाकार अपने कलाकृति से दूर नहीं होता. शायद इसी एवज़ शरत बाबू ने कवि रविंद्रनाथ टैगोरे से कहा था; "अपनी आत्म कथा लिखकर मैं लोगों का बोझ नहीं बढ़ाना चाहता, जो मुझे जानना चाहता वह मुझे मेरी रचनाओं में देख सकता है. क्या मैं वहां नहीं हूँ? जो उनके लिए एक पुस्तक और बढ़ाऊँ?"

पुस्तकें यक़ीनन सामाजिक क्रांति का प्रामाणिक दस्तावेज़ होती है। किताबें बोलती हैं, मन में उठे सवालों का जवाब देती है। श्री प्रेमचंद की कालजयी कृतियाँ कला तथा चिंतन की कृतियाँ हैं जो समय के निर्णय के सामने टिकी हुई हैं। उनकी रचनाओं में राष्ट्रीय मनोकृति का प्रतिबिंब निहित है। उनके मानस पटल पर संवेदनाओं, भावनाओं और विचारों के स्तर पर निर्माणित, अपने आस-पास की घटित घटनाओं को, क्रांतियों को, संघर्षों के पहाड़ों से रास्ता निकालने की क्षमता से, अपनी कृतियों को कहानी के किरदारों के माध्यम से सामान्य जन के सामने प्रस्तुत किया है।

प्रेमचंद ने खुद भी कहा है-“जीवन से बड़ी पुस्तक कोई नहीं, न कोई वेद, न कोई शास्त्र, न कोई साधू न कोई संत।“ और उसी प्रेमचंद के जीवन की पुस्तक का हर पन्ना पलटने वाले कर्म योगी श्री गोयनका जी इस राह के पथिक बनकर अपनी श्रमशीलता व समर्पित भावना से 'पहाड़ों से दूध का दरिया' निकाल लाने की हर मुमकिन कोशिश में यह अथक यात्रा कर रहे हैं। विचारों की इस दृढ़ता और स्थिरता के कारण उन्होंने प्रेमचंद के इस कालजयी कार्य के संकल्प रूपी महायज्ञ में अपना जीवन समर्पित किया है।

इस बदलते युग के परिवर्तनशील दौर में इन्सानी ज़िंदगी में आए हर नए बदलाव को महसूस करना, जनता की संवेदनाओं, समस्याओं को आवाज़ देना भी एक साधना है, जो साहित्य के माध्यम से उस ज़िंदगी के निस्बत और सच्चाई को बेपर्दा करे, यही इन्सानियत परस्ती का प्रमाण है। मार्क्सवादी दृष्टि से भी साहित्य का पहला सिद्धांत रचनाकार, कलाकार का अपने सामाजिक दायित्व के प्रति सचेत होना है।

प्रेमचंद स्कालर और प्रेमचंद विशेषज्ञ श्री कमल किशोर गोयनका जी अकेले एक ऐसे आलोचक और शोधकर्मी हैं जो देश-विदेश में रचे जा रहे हिन्दी साहित्य को भी इतनी गंभीरता से लेते हैं| आप ने प्रेमचंद और प्रवासी साहित्य पर अपना जीवन होम कर दिया| अमेरिका की साहित्यकारा सुधा ओम ढींगरा, जो अपनी साहित्य की रचनात्मक दुनिया में कई संस्थानों से जुड़ी रहकर हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार को नियमित रूप से आगे बढ़ा रही हैं, एक साक्षात्कार मंच पर उनसे रूबरू होती है जो कथाबिंब के 2011 अंक में प्रकाशित हुआ। उनकी बातचीत साहित्य प्रेमी कमल किशोर जी को अपने शोधार्थी जीवन की पगडंडियों पर ले आती है, जहां सुधा जी की प्रश्नावली उनके मन की गाठें खोलतीं जाती हैं। यह साक्षात्कार हमें उनके जीवन के महत्वपूर्ण कोणों से वाक़िफ़ करा पाने में बहुत सही, सटीक व सक्षम है। साक्षात्कार के कुछ अंश उनके अपने जीवन के बारे में और इस मार्ग पर जीवन यात्रा का एक अहम हिस्सा हैं, जो इस ऐतिहासिक शोध कार्य की नींव पर टिके अनेक सवालों की परतों से जवाबों द्वारा उनके बारे में कई रोचक सच्चाइयाँ सामने आती हैं।

सुधा जी का एक सवाल : “अध्ययन और अनुसंधान का विषय 'प्रेमचंद' को क्यों चुना?" के संबंध में जवाब देते हुए गोयनका जी इस सत्य को नकार नहीं पाये कि नियति ने ही उन्हें इस कार्य के लिए चुना। एम ए के बाद उन्होने पी एच डी के लिए शोध विषय स्वीकारा तो वह था “प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान”। तद उपरांत वे प्रेमचंद के प्रति समर्पित हो गए, और समर्पित भावना में निष्ठा कुछ यूँ घुल-मिल गई कि उनकी पहली पहचान प्रेमचंद, दूसरी पहचान प्रेमचंद और तीसरी पहचान भी प्रेमचंद है” अतः प्रेमचंद और गोयनका जी एक हो चुके हैं। कमाल किशोर गोयनका अर्थात.... प्रेमचंद .....!

उनके अपने शब्दों में “1981 में प्रेमचंद: विश्वकोष (दो खंड-लगभग एक हज़ार पृष्ठों की सामाग्री पाठकों-समीक्षकों के सामने उन्हें चकित किए बिना न रह सकी) छपकर आया और जितना व्यापक उसका स्वागत हुआ, उसने तो मुझे हमेशा के लिए प्रेमचंद ही बना दिया। यह एक साधना-आराधना के प्रतिफल के इलावा क्या हो सकता है?

लाली मेरे लाल की जित देखूँ उत लाल
लाली देखन मैं चली मैं भी हो गई लाल !

इस स्थिति का कारण भी यही होगा, प्रेमचंद साहित्य पर अपने जीवन की न जाने कितनी ऋतुएँ, कितने वसंत व्यतीत कर गए कि वे अपने अस्तित्व एवं काल बोध की चेतना की हर परिधी से परे रहे। बस काम साधना बन गया, उपासना बन गया। यहाँ मेरी दुविधा यह है कि मैं प्रेमचंद के साहित्य पर तव्वजो दूँ या गोयनका जी की साहित्य साधना पर, जो असाध्य कार्य उनपर किया है उसपर कुछ लिखूँ। हर परिस्थिति में प्रकाशमान दोनों ही हुए जाते हैं। एक के बिना दूजे के बारे में कुछ सोच नहीं सकते, एक दूसरे के पूरक जो सिद्ध हुए हैं।

शरद चन्द्र पर श्रम और निष्ठा पूर्वक कार्य करने वाले विष्णु प्रभाकर ने स्वयं कहा: “डॉ॰ गोयनका ने प्रेमचंद पर जितना कार्य किया है, वैसा संभवत: किसी शोधकर्ता ने किसी लेखक पर नहीं किया होगा।“ इसी सिलसिले में कड़ी जोड़ते हुए ‘प्रेमचंद विश्वकोश’ पर लिखे हुए एक लेख में श्री सर्वेशवर दयाल सक्सेना के शब्दों में उनका कथन: “गोयनका ने बड़ी खोजबीन के साथ दुर्लभ तथ्य, दस्तावेज़ आदि एकत्रित किए हैं और उन्हें तरतीब से लगा दिया है। ऐसा काम किसी लेखक पर पहली बार हुआ है, इस तरह यह ईंट, रोड़े हटाकर, सख़्त मिट्टी को तोड़कर समतल भुरभुरी कर एक खेत बनाने के जैसा महत्वपूर्ण काम किया है, जिसमें प्रेमचंद के आज के और आगे आने वाले अध्येता अपनी अपनी नज़र के बीज डालकर अपनी मन वांछित फ़सल उगा सकते हैं और फल-फूल बाँट सकते हैं। गोयनका ने प्रमचंद जैसे देहाती लेखक के लिए ठेठ देहाती काम किया है। खेत तैयार करने का और उसके लिए जो कड़ी धूप सही है, मेहनत की है और पसीना बहाया है, उसका मूल्य आगे फ़सल उगाने वाले ज़्यादा आसानी से पहचान सकेंगे,” (दिनमान-अगस्त 1982)

इस समर्पित भावना में सिर्फ़ और सिर्फ़ एकलव्य की मानिंद लक्ष्य सामने रखकर जिस साहित्य साधना में वे इतने लीन हुए और आज भी हैं, उससे तो ज़ाहिर होता है, वे प्रेमचंद में सम्पूर्ण रूप से तन्मय होकर उनसे अटूट रूप में जुड़कर उन्हीं की भांति इस अमर प्रेम में खुद प्रेमचंद बन गए हैं। डॉ॰ कमला रत्नम जी ने “प्रेमचंद गंगा के भागीरथ: कमल किशोर गोयनका’ नामक लेख में अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है- “कमल किशोर गोयनका ने प्रेमचंद अध्ययन में अद्भुत और मौलिक मानदंण्ड स्थापित किए हैं। मात्र पंद्रह सालों वर्षों में उन्होंने ने प्रेमचंद के सम्बंध में अकेले जितनी दुर्लभ और प्रामाणिक जानकारी प्रस्तुत की है, उतनी दस व्यक्ति मिलकर इतने समय में कर पाते, इसमें संदेह है। इसलिए गोयनका को प्रेमचंद-गंगा का भागीरथ कहा जा सकता है।“ ये अलंकार उनके संकल्प- ‘प्रेमचंद को समर्पित उनके जीवन की वाटिका’ के सप्तरंगी सुमन है, जो हमेशा खिलते रहेंगे, महकते रहेंगे।

हिन्दी-कहानी इतिहास में प्रेमचंद को वैसे भी अमरत्व प्राप्त है, जैसे वाल्मीकि, व्यास, कालीदास,

तुलसीदास कबीर को प्राप्त है। यदि भविष्य में कोई लेखक इस अमरत्व को सिद्ध करता है तो उसे इन्हीं भारतीय साहित्यकारों के साहित्य-पाठ से गुज़रना होगा।

प्रेमचंद की कहानियों के कालक्रमानुसार अध्ययन: में 1908 -1936, 29 वर्ष के अपने रचनात्मक काल में 301 कहानियों की रचना की। कहानियों का अध्ययन, बताता है कि उनमें पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय, संस्कृतिक, धार्मिक आदि सम्बन्धों से बुनी हुई कहानियों में जहां रिश्तों के निबाह और निर्वाह के अविस्मरणीय प्रसंग दर्शाये हैं वहीं मनोवैज्ञानिक ढंग से मनुष्यता के अनेक चेहरों-रूपों का चित्रण कराते हुए मानवता की स्थापना कराती हुई उनकी कहानियाँ भारतीयता की अनुभूति कराती हैं, जो पाठक को 'इंडिया' की नहीं 'भारत' की यात्रा कराती हैं।

एक नहीं, अनेक ऐसी बातें पाठक के रूप में जानना मेरे लिए एक आश्चर्यजनक अनुभूति है। एक-दो विशेष उल्लेख ज़रूर करना चाहूंगी। (संदर्भ: कल्पान्त -2009, डॉ॰ कमल किशोर गोयनका -हिन्दी कथाकार प्रेमचंद साहित्य के मर्मज्ञ- में से) डॉ॰ रमेश कुंतल मेघ अपने एक पत्र में लिखते है-सिर्फ अंश है- "आपने प्रेमचंदायन को व्यापक गति दी है। दृष्टिकोण अपने-अपने हैं। वे सुरक्षित रहेंगे। मैं आपकी मेहनत, लगन और शोध-साधना का सदैव से क़द्रदान रहा हूँ बावजूद इसके कि हमारी विचारधाराएँ परस्पर विरुद्ध हैं।" आगे वे लिखते हैं- "भोपाल के भारत भवन से हटें नहीं डटें। खिड़कियाँ चारों दिशाओं में खुलवाएँ। आपने जो कार्य किया है प्रेमचंद पर, वह एक संस्था भी नहीं कर सकती।"

यहाँ गोयनका जी के कुछ वैचारिकता सामने आती है। उन्हें छल , झूठ, और दोहरा व्यक्तित्व कतई प्रिय नहीं, अपने विचारों की इस दृधता और स्थिरता के कारण भी उनके शत्रु भी उनकी प्रशंसा कर रहे हैं। उनकी विनम्रता का एक पक्ष कमलेश्वर जी के पत्र से उद्घाटित हुआ है। कुछ अंश उसी ख़त से .... "आपका 30. 03. 04, का पत्र साथ में 'प्रेमचंद का कालक्रमानुसार अध्ययन' योजना की रूपरेखा। यह आपकी सदाशयता है कि इस योजना पर आपने सम्मति मांगी है। मैं आभारी हूँ। ...., ..., "वैसे प्रेमचंद का विचार पक्ष ही इस शोध का निकष होगा। आपके इस साहित्यिक महामंथन से जो अमृतकलश निकलेगा उसे आप यदि देव-दानवों की छीना-झपटी में छलकने नहीं देंगे तो बेहतर होगा। यही आपकी साहित्यिक और बौद्धिक शुचिता का प्रमाण होगा।"

विषय सामाग्री बेपनाह है, जितना पढ़ती हूँ , पढ़कर यही अहसास बरक़रार रहता है- "The more I read, the more I know about him, still I get the feel, as to how little I know. Definitely knowledge is vast.....! "

प्रेमचंद के जीवन और साहित्य के संबंध में इतनी प्रभूत सामाग्री उपलब्ध है जिसके आधार पर प्रेमचंद की एक आलोचनात्मक जीवनी लिखी जा सकती है। डॉ॰ गोयनका ने इस सामग्री की प्रामाणिकता का पूरा ध्यान रखा है और सर्वथा वैज्ञानिक रीति से इसका संकलन, वर्गीकरण, आदि किया है। उनके शोधकारी अध्ययन के कार्य के लिए मात्र यही कहना एक सच होगा कि यह अनुसंधान कार्य भविष्य के लिए प्रकाश-स्तंभ या मार्गदर्शक के रूप में मान्य होगा। इस संदर्भ ग्रंथ में गोयनका जी ने अपनी सृजन प्रक्रिया से ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर सुलभ किया है, वह न केवल गंभीर पाठकों के लिए, पर शोधार्थियों के लिए उपयोगी प्रमाणित हुआ है। निश्चय ही सम्पूर्ण साहित्य जगत, प्रेमचंद साहित्य के अध्येता व भावी पीढ़ियों के अध्येताओं के लिए भी यह ऐतिहासिक देन महत्वपूर्ण ही नहीं, स्थायी रूप से मार्गदर्शन

भी करेगी। डॉ॰ गोयनका के श्रमसाध्य प्रयास से अज्ञात अछूते पहलुओं को प्रकाशमान करके खोज-संघर्ष के इतिहास में इस अविस्मरणीय योगदान के लिए साहित्य के साधक हमेशा ऋणी व कृतज्ञ रहेंगे।
जयहिंद

 देवी नागरानी (न्यू जर्सी, यूएसए)

संग्रह: प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन,

प्रेमचंद , लेखकक: कमल किशोरे गोयनका, पन्ने, मूल्य:, प्रकाशक

मुखपृष्ठ

8

व्यक्तित्व एवं कृतित्व के आईने में- श्री आर॰ पी॰ शर्मा

-देवी नागरानी

एक दस्तावेज़ी हैसियत का परिचय: श्री आर॰ पी॰ शर्मा 'महरिष' ग़ज़ल संसार के जाने माने छंद-शस्त्र के हस्ताक्षर हैं। उनका रुझान लंबे अरसे से ग़ज़ल लेखन की ओर हुआ और वे इस दिशा में निरंतर गति की ओर अग्रसर है। उनकी रचनधर्मिता पग-पग मुखर है और वही उनकी शख्सियत को एक अनूठी बुलंदी पर पहुँचाती है। चार दशक से महरिश जी इस ग़ज़ल साधना में जुटे हुए है। ये एक ऐसे सिपाही है जिनका जीवन काल ग़ज़लकारों के मार्गदर्शन देने के लिए व्यतीत हुआ है, छंद पर उनके विमर्श, प्रस्तावनाएँ, समीक्षाएं अनेक पत्रिकाओं में देखने और पढ़ने को मिलतीं हैं ।

गुफ्तगू (जनवरी-मार्च २००५)में अदबी खबरों के अंतरगत उनके सुपुत्र डा॰ रमाकांत शर्मा द्वारा पेश की गई उपाधि की सूचना काव्य शोध संस्थान द्वारा हिंदी भवन, नई दिल्ली में यूं थी- "मुंबई के प्रख़्यात ग़ज़ल-शिल्पकार और ग़ज़लकार श्री आर॰ पी॰ शर्मा 'महरिष' को माननीय श्री विष्णु प्रभाकर और श्री कमलेश्वर के हाथों "पिंगलाचार्य" की उपाधि से विभूषित किया गया। इस अवसर पर उन्हें काव्य शोध संस्थान ने शाल और मनमोहन गोसाई जी की पावन स्मृति में ११००० हज़ार रुपये देकर पुरस्कृत

किया गया। समारोह में डा॰ सादिक नवाब, डा॰ कमाल सिद्दिकी, शिव कुमार मिश्र तथा मख़मूर सईदी सहित हिंदी और ऊर्दू साहित्य के जाने माने साहित्यकार उपस्थित थे।"

ग़ज़ल लेखन का मार्ग सुगम और प्रशस्त करने के लिए ग़ज़ल, बहर, छंद-शास्त्र उन्होने कई उपयोगी पुस्तकें लिखीं हैं। आपकी प्रकाशित पुस्तकें इस प्रकार हैं १. हिंदी गज़ल संरचना-एक परिचय (सन् १९८४ में उनके द्वारा इल्मे- अरूज़ (उर्दू छंद-शास्त्र) का सर्वप्रथम हिन्दी में रूपांतर, २. गज़ल-निर्देशिका, ३.गज़ल-विधा, ४.गज़ल-लेखन कला, ५. व्यहवारिक छंद-शास्त्र (पिंगल और इल्मे- अरूज़ के तुलनात्मक विश्लेषण सहित), ६. नागफ़नियों ने सजाईं महफिलें (ग़ज़ल-संग्रह), ७. गज़ल और गज़ल की तकनीक. 8॰ उनकी नवनीतम "मेरी नज़र में" (2009), जिसमें उनके द्वारा लिखी गईं 31 कृतियाँ शामिल हैं, जो अपने आप में दस्तावेज़ी हैसियत एवं ऐतिहासिक महत्व रखती हैं, जैसे: प्रमिला भारती का (गीत-संग्रह) "नदी संवेदनाओं की"। जाने माने कवि श्रेष्ठ श्री किशोर कर्वे के संघर्षपूर्ण काल में अर्जित खटे-मीठे अनुभवों के आधार पर लिखित कृति "अमृत बरसे", श्री अनिल गुप्ता 'अनिल' की "उज्जयनी" जिसके बारे में महरिष जी लिखते हैं "इसमें ऐतिहासिल एवं संस्कृतिक नगर उज्जयनी के प्राचीन इतिहास तथा सिंहस्थ महात्म्य के अतिरिक्त उसकी तमाम भूगौलिक स्थितियाँ और कीर्ति पुरुषों, धार्मिक महत्वताओं का आत्म विवेदन स्वरूप पुस्तक की संपूर्णता बना रहा है।" स्वामी श्री श्यामनन्द जी सरस्वती पर आलेखों की कृति " आज का कबीर" पर महरिष जी उन्हें दोहाकार, ग़ज़लकार, व रुबाईकार के आचार्या के अलंकारों से विभूषित करते हुए निर्णयात्मक रूप से लिखते हैं- इसीलिए स्वामी जी को "आधुनिक कबीर" कहा गया है

अपने नज़रिये से स्थिति को पहचानना, परखना और उस पर टिपणी करना तब ही सार्थक होता है जब उसमें रचनाकार के लिखने के समय की स्थिति को भी ध्यान में रखा जाता है, कभी कभी तो रचनकर की मनोस्थिति के साथ हमकदम होकर सोचना पड़ता है। डॉ॰ राजेंद्र प्रसाद मोदी की प्रस्तुति "हक़ीक़त-अंदाजे-बयान" पर कलम चलाते हुए महरिश जी ने अपने ग़ज़ल विधा के तजुरबाट को समेटते हुए लिखा है-"डॉ॰ मोदी की ग़ज़लें चिंतन और चिंता की विशुद्ध उपज है, जिन्हें उन्होने सरल, सरस, तथा सुबोध शब्द दिये हैं, जिनमें निमित भावार्थ ह्रदय को छूते हैं, कचोटते हैं, और गुदगुदाते हैं। उनकी ग़ज़लें स्तरीय , उद्देश्यपूर्ण एवं समय की मांग के अनूरूप हैं "। उनके ह्रदय की सरलता और सदभावना भरी भाषा ही उनका असली पारिचय है जो उन्के व्यक्तित्व के साथ जुड़ा हुआ है।

यह संग्रह "मेरी नज़र में" एक अनुभूति बनकर सामने आया है, जिसे पढ़ने वालों को एक सुअवसर मिलेगा कि कैसे महरिष जी सरलता और सादगी से अपनी पारखी नज़र से मूल्यांकन करते हुए अमूल्य राय के साथ-साथ सुझाव भी देते है. उनका वायक्तित्व एक व्यक्ति का नहीं, वे अपने आप में एक संस्था हैं, एक सजीव अभियान जो ग़ज़ल को दशा और दिशा देता है।

मेरे प्रयास का पहला पड़ाव “चराग़े-दिल” श्री 'महरिष' गुंजार समिति' के आंगन में लोकार्पण उन्ही के मुबारक हाथों से हुआ यह मेरा सौभाग्य रहा है. इस समिति के अध्यक्ष श्री. आर. पी. शर्मा जिन्हें 'पिंगलाचार्य' की उपाधि से निवाज़ा गया है, छंद शास्त्र की विध्या और परिपूर्णता का एक अनोखा विश्वविध्यालय है लगता है एक चलती फिरती गज़ल है. उनके नक्शे-पा पर चलते अपने अंतरमन की गहराइयों में खोकर मैंने जो कुछ वहां पाया, वही गज़ल गीत का पहला सुमन 'चराग़े-दिल' बनकर सामने आया । इस अवसर पर उन्होने एक अपने मनोभाव व सद्भावनाएँ आशीर्वाद के रूप में यह ग़ज़ल प्रस्तुत की ...

किस कदर रौशन है महफ़िल आज की, अच्छा लगा

इस 'चराग़े-दिल' ने की है रौशनी, अच्छा लगा.

इक ख़ज़ना मिल गया जज़्बातो-एहसासात का

हम को ये सौग़ात गज़लों की मिली, अच्छा लगा.

यूं तो 'महरिष' और भी हमने कहीं गज़लें बहुत

ये जो 'देवी' आप की ख़ातिर कही, अच्छा लगा.

मेरे इस संग्रह में उनकी लिखी प्रस्तावना के रूप में अगाज़ी हस्ताक्षर शब्द ग़ज़ल को परिभाषित करते हैं- "ग़ज़ल उर्दू साहित्य की एक ऐसी विधा है जिसका जादू आजकल सबको सम्मोहित किए हुए है. ग़ज़ल ने करोड़ों दिलों की धड़कनों को स्वर दिया है. इस विध्या में सचमुच ऐसा कुछ है जो आज यह अनगिनत होंठों की थरथराहट और लेखनी की चाहत बन गई है. ग़ज़ल कहने के लिये हमें कुशल शिल्पी बनना होता है, ताकि हम शब्दों को तराश कर उन्हें मूर्त रूप दे सकें, उनकी जड़ता में अर्थपूर्ण प्राणों का संचार कर सकें तथा ग़ज़ल के प्रत्येक शेर की दो पंक्तियाँ या मिसरों में अपने भावों, उद् गारों, अनुभूतियों आदि के उमड़ते हुए सैलाब को 'मुट्ठी में आकाश, कठौती में गंगा, कूजे में दरिया, बूंद में सागर के समान समेट कर भर सकें."

महरिश जी की प्रकाशन श्रंखला में “ग़ज़ल-सृजन” उनकी नवनीतम पेशकश 2012 में मंजरे-आम पर अपने स्रजनशील अनुभूतियों के साथ आई हैं इसमें ग़ज़ल के बाहरी और आंतरिक स्वरूप, काफ़िया या रदीफ़, कथ्य एवं शिल्प तथा ग़ज़ल की अन्य बारीकियों की विस्तार से चर्चा की गई है, तथा पर्याप्त संख्या में प्रचलित बहरों के अंतर्गत तख़्ती के उदाहरण दिये गए हैं। इसकी अतिरिक्त इस पुस्तक में अन्य काव्य विधाओ, रुबाई, हाइकु रुबाई, महिया, महिया ग़ज़ल, तज़ामीन, दोहा, जनक छंद तथा ग़ज़लों

के लिए उपयुक्त छंदों और ग़ज़ल से संबंदित अन्य सुरुचिपूर्ण सामाग्री का भी समावेश है। ग़ज़लकारों के लिए यह कृति एक वरदान स्वरूप है, जो पग-पग उनका मार्गदर्शक करेगी।

नयी ग़ज़ल, गुफ्तगू और अनेक मय्यारी पत्रिकाओं में उनके छंद को लेकर सिलसिलेवार लेख छपते रहते हैं। अपने ज्ञान को वे आम जन तक पहुँचने का कार्य कुछ ऐसे कर रहे हैं, जैसे एक मौन साधक अपने इष्ट को साधना समर्पित कर रहा हो।

ग़ज़ल के मिज़ाज के बारे में उनकी अपनी विचार धारा उनके शब्दों में–" ग़ज़ल कोमल भी है और कठोर भी. उसका लहज़ा कभी नर्म तो कभि तीखे तेवर लिये होता है, तो कभी दोनों का मणि कांचन संयोग कुछ और ही लुत्फ़ पैदा कर देता है।"

ग़ज़ल विधा की बुनियाद, छंद-शास्त्र (इलमे-अरूज़) की अनगिनत बारीकियों पर बना एक भव्य भवन है जिसमें कवि अपने मनोभाव, उद्‌गार, विचार, दुख-दर्द, अनुभव तथा अपनी अनुभूतियां सजाता है। एक अनुशासन का दायरा होता है जिस पर उसका विस्तार अनंत की ओर खुलता है । ग़ज़ल सुबह की ताज़गी है, दोपहर की खामोशी है, शाम की उदासी है और रात के सन्नाटों की आवाज़ है । ग़ज़ल आत्मा का अमर गीत है जो अतृप्त मन में तृप्ति का आनंद देताहै।" आगे वे लिखते हैं-"ग़ज़ल की बुनियादी शर्त उसका शिल्प है एक अनगढ़ ग़ज़ल एक अनगढ़ पत्थर की तरह होती है. संगतराश जिस प्रकार छेनी और हथोड़ी से पत्थर में जीवंतता ला देता है और तराशे गये पत्थर में उसका एहसास, उसकी अनुभूतियाँ और उसकी अभिव्यक्ति छुपी होती है, वो सब सजीव सी लगती हैं। इसी प्रकार क तराशी हुई ग़ज़ल का तराशा हुआ शेर, सिर्फ दो मिसरों का मिलाप नहीं होता, न उक्ति होती है, न सुक्ति, अपितू वह एक आकाश होता है-अनुभूतियों का आकाश ! ग़ज़ल का एक एक शेर कहानी होता है." उनकी सरल लेखनी उनकी पहचान आम आदमी के दिल में बना पाती है,

ज़रा मुलाइजा फरमाएं कि "प्रोत्साहन" त्रेमाहिक के स्वर्गीय प्रधान संपादक श्री जीवतराम सेतपाल ने अपने सँपादकीय में ग़ज़ल के बारे में क्या कहते हैः "सुकुमार जूही की कली की भांति, मोगरे की मदमाती सुगंध लेकर, गुलाबी अंगड़ाई लेती हुई, पदार्पण करने वाली गज़ल, भारतीय वाङ्मय की काव्य विधा के उपवन में रात की रानी बन बैठी. अरबी साहित्य से निस्स्रत, फ़ारसी भाषा में समाद्रत, उर्दू में जवान होकर, अपनी तरुणाई की छटा बिखेरने और हिंदी साहित्य के महासागर में सन्तरण करने आ गई है गज़ल. कम शब्दों में गंभीरता पूर्वक बड़ी से बड़ी बात को भी, नियमों में बाँधकर बड़ी सफलता और सहजता से दोहों की भाँति गहराई से कह देने में समर्थ, गेय, अत्यधिक लयात्मक, काव्य विधा का मख़मली अंग है ग़ज़ल. " (महरिष जी की पुस्तक "गज़ल लेखन कला" से)।

उनके इस संकलन में उनकी दूरंदेशी के सामने मेरी यह नज़र बस क़द्रदाँ बनकर झुकी हुई है। दया और दुआ के दाइरे कहाँ सीमित होते हैं, बस क़लम की रवानी खुदा की महरबानी के साथ बरकरार रहे, उनके आशीर्वाद की तलबगार ....!!

 देवी नागरानी

न्यू जर्सी, यू. एस. ए. dnangrani@gmail.com

श्री आर.पी शर्मा का जन्म ७ मार्च १९२२ ई को गोंडा में (उ.प्र) में हुआ. शासकीय सेवा से सेवानिव्रत्त श्री शर्मा जी का उपनाम "महरिष" है और आप मुंबई में निवास करते हैं. अपने जीवन-सफर के 89 वर्ष पूर्ण कर चुके श्री शर्मा जी की साहित्यिक रुचि आज भी निरंतर बनी हुई है. ग़ज़ल रचना के प्रति आप की सिखाने की व्रुति माननीय है. विचारों में स्फूर्ति व ताज़गी बनी हुई है, जिसका प्रभाव आपकी ग़ज़लों में बखूबी देखा जा सकता है, तथा विचारों की यह ताज़गी आप की रोज़मर्रा की जिंदगी को भी संचारित करती रहती है. ग़ज़ल संसार में वे "पिंगलाचार्य" की उपाधि से सन्मानित हुए हैं, ग़ज़ल लेखन कला मेरे विचार में एक सफर है जिसकी मंजिल शायद नहीं होती.

तवील जितना सफ़र ग़ज़ल का

कठिन है मंज़िल का पाना उतना. ..देवी ,

आपकी प्रकाशित पुस्तकें इस प्रकार हैं १. हिंदी गज़ल संरचना-एक परिचय (सन् १९८४ में मेरे द्वारा इल्मे- अरूज़ (उर्दू छंद-शास्त्र) का सर्व प्रथम हिंदी में रूपांतर, २. गज़ल-निर्देशिका, ३. गज़ल-विधा, ४. गज़ल-लेखन कला, ५. व्यहवारिक छंद-शास्त्र (पिंगल और इल्मे- अरूज़ के तुलनात्मक विश्लेषण सहित), ६. नागफनियों ने सजाईं महफिलें (ग़ज़ल-संग्रह), ७. गज़ल और गज़ल की तकनीक. उनकी आने वाली पुस्तक है "मेरी नज़र में" जिसमें उनके द्वारा लिखी गईं अनेक प्रस्तावनाएँ, समीक्षाएँ हैं, जो उन्होने अनेक लेखकों, कवियों और ग़ज़लकारों पर लिखीं हैं। वो अनेक पत्रिकाओं में प्रसारित हुई हैं. यह संग्रह एक अनुभूति बनके सामने आया है, जिसे पढ़ने वालों को एक सुअवसर मिलेगा कि कैसे महरिष जी सरलता और सादगी से अपनी पारखी नज़र अपनी अमूल्य राय के साथ साथ सुझाव भी देते है.

मेरे पहले ग़ज़ल संग्रह चराग़े दिल के विमोचन के अवसर पर ग़ज़ल के विषय में श्री आर.पी.शर्मा 'महरिष्' इस किताब में छपे अपनी प्रस्तावना स्वरूप लेख 'देवी दिलकश ज़ुबान है तेरी' में क्या कहते हैं, अब सुनिये महरिष जी की ज़ुबानीः

"ग़ज़ल उर्दू साहित्य की एक ऐसी विधा है जिसका जादू आजकल सबको सम्मोहित किए हुए है. ग़ज़ल ने करोड़ों दिलों की धड़कनों को स्वर दिया है. इस विध्या में सचमुच ऐसा कुछ है जो आज यह अनगिनत होंठों की थरथराहट और लेखनी की चाहत बन गई है. ग़ज़ल कहने के लिये हमें कुशल शिल्पी बनना होता है, ताकि हम शब्दों को तराश कर उन्हें मूर्त रूप दे सकें, उनकी जड़ता में अर्थपूर्ण प्राणों का संचार कर सकें तथा ग़ज़ल के प्रत्येक शेर की दो पंक्तियाँ या मिसरों में अपने भावों, उद् गारों, अनुभूतियों आदि के उमड़ते हुए सैलाब को 'मुट्ठी में आकाश, कठौती में गंगा, कूजे में दरिया, बूंद में सागर के समान समेट कर भर सकें."

यहां मैं ग़ज़ल के मिज़ाज के बारे में भी कुछ कहना चाहूंगा. ग़ज़ल कोमल भी है और कठोर भी. उसका लहज़ा कभी नर्म तो कभि तीखे तेवर लिये होता है, तो कभी दोनों का मणि कांचन संयोग कुछ और ही लुत्फ़ पैदा कर देता है,

चटपटी है बात लक्षमण - सी मगर

अरथ में रघुवीर- सी गंभीर है

सुनके 'महरिष' यूं लगा उसका सुख़न

चाप से अर्जुन के निकला तीर है.

हरियाना के प्रख़्यात उस्ताद शाइर सत्यप्रकाश शर्मा 'तफ़्ता ज़ारी' (कुरुक्षेत्र) ने तो ग़ज़ल से संबोधित एक अनूठी बात कही है, वे फर्माते है:

सुलूक करती है मां जैसा मुब्तदी से ग़ज़ल

मगर एक अग्नि-परीक्षा है मुन्तही के लिये.

कहने का मतलब यह कि नवोदतों के लिये तो ग़ज़ल मां जैसा व्यहवार करती है परन्तु इस विध्या में पारंगत व्यक्तियों को भी कभी अग्नि-परीक्षा से गुज़रना पड़ता है.

"बात बनाये भी नहीं बनती" जैसी कठिन परिस्थिती इनके सामने उत्पन्न हो जाति है. इस शेर पर मेरी तज़्मीम भी है, -

निसार करती है उस पर ये ममता के कंवल

उसी के फिक्र में रहती है हर घड़ी, हर पल

मसाइल उसके बड़े प्यार से करती है ये हल

सुलूक करती है मां जैसा मुब्तदी से ग़ज़ल

मगर इक अग्नि-परीक्षा है मुन्तही के लिये.

प्रख़्यात शाइर श्री क्रष्ण बिहारी 'नूर' के एक मशहूर शेर :

चाहे सोने के फ़्रेम में जड़ दो

आईना झूठ बोलता ही नहीं.

इस शेर पर मैंने अपनी ओर से तीन मिसरे लगाये हैं:

"तुम जो चाहो तो ये भी कर देखो

हर तरह इसका इम्तिहां ले लो

लाख लालच दो, लाख फुसुलाओ

चाहे सोने के फ़्रेम में जड़ दो

आईना झूठ बोलता ही नहीं."

यह तज़्मीन श्री तर्ज़ साहिब को सादर समर्पित है.

अब मैं आपको एक पध्यात्मक रचना सुनाना चाहूगा, मौके की चीज़ है, समाअत फ़रमाएं:

आशीर्वाद श्रीमती देवी नागरानी जी को 'चराग़े-दिल' के विमोचन के अवसर पर

किस कदर रौशन है महफ़िल आज की अच्छा लगा

इस 'चराग़े-दिल' ने की है रौशनी अच्छा लगा.

आप सब प्रबुद्ध जन को है मेरा सादर नमन

आप से इस बज़्म की गरिमा बढ़ी अच्छा लगा.

कष्ट आने का किया मिल जुल के बैठे बज़्म में

भावना देखी जो ये सहयोग की अच्छा लगा.

इस विमोचन के लिये 'देवी' बधाई आपको

आरज़ू ये आपकी पूरी हुई अच्छा लगा.

इक ख़ज़ना मिल गया जज़्बातो-एहसासात का

हम को ये सौग़ात गज़लों की मिली अच्छा लगा.

आपको कहना था जो 'देवी' कहा दिल खोलकर

बात जो कुछ भी कही दिल से कही अच्छा लगा.

भा गया है आपका आसान अंदाज़े-बयां

आपने गज़लों को दी है सादगी अच्छा लगा.

हर तरफ बिखरी हुई है आज तो रंगीनियां

रंग बरसाती है गज़लें आपकी अच्छा लगा.

ज़ायका है अपना अपना, अपनी अपनी है मिठास

चख के देखी हर गज़ल की चाशनी अच्छा लगा.

यूं तो 'महरिष' और भी हमने कहीं गज़लें बहुत

ये जो 'देवी' आप की ख़ातिर कही अच्छा लगा.

श्री आर. पी. शर्मा 'महरिष'

रिज़र्व बैंक आफिसर्स क्वाटर्स

ए १ वरदा, कीर्ती कालेज के निकट

वीर सावरकर मार्ग, दादर।प।

मुंबई ४०००२८

२२ अप्रेल, २००७

और आगे दूसरा भाग

गज़ल एल कला

००

दूसरा भाग

गज़ल एल कला

" गज़ल-लेखन कला" के कुछ चुनिंदा अंश प्रस्तुत है उनकी ही लेखनी के अनुसार उनके शब्दों में.प्रष्ट १८-२३ से साभार.

"गज़ल कहने के लिये हमें कुशल शिल्पी बनना होता है ताकि हम शब्दो् को तराश कर उन्हें मूर्त रूप दे सकें, उनकी जड़ता में अर्थपूर्ण प्राणों का संचार कर सकें तथा ग़ज़ल के प्त्येक शेर की दो पंक्तियों (मिसरों) में अपने भावों, उद् गारों, अनुभूतियों आदि के उमड़ते हुए सैलाब को 'मुट्ठी में आकाश, कठौती में गंगा, कूजे में दरिया, बूंद में सागर के समान समेट कर भर सकें." इसके लिये हमें स्वय को सक्षम तथा लेखनी को सशक्त बनाना होता है. तब जाकर हममे वह सलीका, वह शऊर, वह सलाहियत, वह योग्यता एवं क्षमता उत्पन्न होती है कि हम ऐसे कलात्मक शेर स्रजित करने में समर्थ होते हैं जो "लोकोक्ति" बन जाते हैं, और अक्सर मौकों पर हमारी ज़बान पर रवाँ (गतिशील) हो जाते हैं, जैसेः

मैं जिसे ओढ़ता बिछाता हूँ

वो गज़ल आपको सुनाता हूँ.............दुष्यंत कुमार

कहानी मेरी रूदादे-जहाँ मालूम होती है

जो सुनता है, उसीकी दास्ताँ मालूम होती है......सीमाब अकबराबादी

इस संबंध में, श्री ग्यानप्रकाश विवेक, ग़ज़ल के कला पक्ष को विशेष महत्व देते हुए कहते हैः

"ग़ज़ल की बुनियादी शर्त उसका शिल्प है एक अनगढ़ ग़ज़ल एक अनगढ़ पत्थर की तरह होती है. संगतराश जिस प्रकार छेनी ओर हथोड़ी से पत्थर में जीवंतता ला देता है और तराशे गये पत्थर में उसजका एहसास, उसकी अनुभूतियाँ और उसकी अभिव्यक्ति छुपी होती है, वो सब सजीव सि लगति हें.इसी प्रकार क तरशी हुई ग़ज़ल का तराशा हुआ शेर, सिर्फ दो मिसरों का मिलाप नहीं होता, न उक्ति होती है, न सुक्ति, अपितू वह एक आकाश होता है-अनुभूतियों का आकाश ! ग़ज़ल का एक एक शेर कहानी होता है."

यूं तराशा है उनको शिल्पी ने

जान सी पड़ गई शिलाओं में...देवी

सारा आकाश नाप लेता है

कितनी ऊँची उड़ान है तेरी..देवी (ये शेर महरिष जी को बहुत पसंद थे)

शेर को कहने व समझने के बारे में बकौल हज़त लखनवी साहब का शेर प्रसुत करते हैं

शेर कहना यूँ तो मोती है मोती पिरोने का अमल

शेर कहने से भी बहतर है समझना शेर का.)

उस फ़न के कद्रदान हज़्रत अनवर साबरी के लफ्ज़ों मेंः

"ग़ज़ल को छोटी छोटी बहरों में ढालना तथा उसमें प्रयुक्त थोड़े से शब्दों में मन की बात कहना और वह भी सहजता से, यह भी एक कमाल की कला है."

शायर तो कोई शख़्स भी हो सकता है

फ़नकार मगर बनना बहुत मुश्किल है........बक़ौल डा॰ अल्लामी(रुबाई की अंतिम दो पंक्तियाँ)

अपने नये गज़ल संग्रह चरागे़ दिल में देवी नागरानी ग़ज़ल के विषय में क्या कहती हैः

"कुछ खुशी की किरणें, कुछ पिघलता दर्द आँख की पोर से बहता हुआ, कुछ शबनमी सी ताज़गी अहसासों में, तो कभी भँवर गुफा की गहराइयों से उठती उस गूँज को सुनने की तड़प मन में जब जाग उठती है तब कला का जन्म होता है. सोच की भाषा बोलने लगती है, चलने लगती है, कभी कभी तो चीखने भी लगती है.यह कविता बस और कुछ नहीं, केवल मन के भाव प्रकट करने का माध्यम है, चाहे वह गीत हो या ग़ज़ल, रुबाई हो या कोई लेख, इन्हें शब्दों का लिबास पहना कर एक आक्रति तैयार करते हैं जो हमारी सोच की उपज होती है."

और आगे बढ़ते हुए महरिष जी कहते है ग़ज़ल उर्दू के अतिरिक्त हिंदी, मराठी, गुजराती, पंजाबी, कशमीरी, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी , सिंधी तथा भारत की अन्य कुछ भाषाओं में लिखी जाती है. ज़रा मुलाइजा फरमाएं कि "प्रोत्साहन" त्रेमाहिक के प्रधान संपादक श्री जीवतराम सेतपाल अपने सँपादकीय में ग़ज़ल के बारे में क्या कहते हैः

"सुकुमार जूही की कली की भांति, मोगरे की मदमाती सुगंध लेकर, गुलाबी अंगड़ाई लेती हुई, पदार्पण करने वाली ग़ज़ल, भारतीय वाङ् मय की काव्य विधा के उपवन में रात की रानी बन बैठी. अरबी साहित्य से निस्स्रत, फ़ारसी भाषा में समाद्रत, उर्दू में जवान होकर, अपनी तरुणाई की छटा बिखेरने और हिंदी साहित्य के महासागर में सन्तरण करने आ गई है गज़ल. कम शब्दों में गंभीरता पूर्वक बड़ी से बड़ी बात को भी, नियमों में बाँधकर बड़ी सफलता और सहजता से दोहों की भाँति गहराई से कह देने में समर्थ, गेय, अत्यधिक लयात्मक, काव्य विधा का मख़मली अंग है ग़ज़ल. "(गज़ल लेखन कला से)

अच्छी ग़ज़ल के प्रत्येक शेर का पहला मिसरा कुछ इस प्रकार कहा जाता है कि श्रोता दूसरे मिसरे को सुनने के लिये उत्कंठित हो जाता है, और उसे सुनते ही चमक्रत तथा आनन्द विभोर हो उठता है. "ग़ज़ल" के विचार काफ़ियों (तुकांत शब्दों) के इर्द गिर्द घूमते हैं. काफ़िया शेर का चर्मोत्कर्ष है, जिस पर आते ही और निहितार्थ या व्यंगार्थ को समझते ही श्रोता अथवा पाठक चमक्रत एवं विमुग्ध हो उठते हैं.
वास्तविकता यह है कि कथ्य और शिल्प के सुंदर तालमेल से ही एक सही ग़ज़ल जन्न लेती है. " श्री दीक्षित दनकौरी द्वारा संपादित "ग़जल दुष्यंत के बाद" में लिखे महरिष जी के कुछ अंश, अंत में स्वरचित ग़ज़ल की कुछ पँक्तियाँ प्रस्तुत हैं -

फूल खिले, गुंजार हुई है

एक ग़ज़ल साकार हुई है

झनके है शब्दों के नुपुर

अर्थ-भरी झंकार हुई है.

मन की कोई अनुभूति अचानक

रचना का आधार हुई है

बात कभी शबनम सी "महरिष"

और कभी अंगार हुई है.

कितना सत्य है उनके कहे इस शेर में

वो अल्फ़ाज़ मुंह बोले ढूंढती है

गज़ल ज़िंद: दिल काफिए ढूंढती है.

आगे और... तीसरा भाग

आर.पी शर्मा महर्षि को "पिंगलाचार्य" की उपाधि

गुफ्तगू (जनवरी-मार्च २००५)में अदबी खबरों के अंतरगत उनके सुपुत्र डा॰ रमाकांत शर्मा द्वारा पेश की गई उपाधि की सूचना काव्य शोध संस्थान द्वारा हिंदी भवन, नई दिल्ली में। मुंबई के प्रख्यात ग़ज़ल शिल्पकार और ग़ज़लकार श्री आर।पी शर्मा 'महरिष' को माननीय श्री विष्णु प्रभाकर और श्री कमलेश्वर के हाथों "पिंगलाचार्य" की उपाधि से विभूषित किया गया। इस अवसर पर उन्हें काव्य शोध संस्थान ने शाल और मनमोहन गोसाई जी की पावन स्मृति में ११००० हजा़र रुपये देकर पुरस्कृत किया गया। समारोह में डा॰ सादिक, डा॰ कमाल सिद्दिकी, शिव कुमार मिश्र तथा मख़मूर सईदी सहित हिंदी और ऊर्दू साहित्य के जाने माने साहित्यकार उपस्थित थे।

ग़ज़ल क्या, कब, क्यों और कैसे?

काफ़िया-शास्त्र जो इस वार्तालाप का अंग भी है, उसपर खास रौशनी डालते हुए श्री आर. पी. शर्मा 'महरिष' की प्रकाशित किताब "ग़ज़ल-लेखन कला" के शुरूवाती पन्नों (११-१६) में ग़ज़ल के बारे में अक्सर पूछे जाने वाले विभिन्न प्रश्न मुंबई के जाने माने साहित्यकार, कहानीकार, कवि और ग़ज़लकार श्री म॰ न॰ नरहरि ने साक्षात्कार के दौरान किये और प्रश्नों का क्रम कुछ इस प्रकार था कि ग़ज़ल क्या, कब, क्यों और कैसे पर क्रमबद्ध रूप से विस्तार में गहन चर्चा हुई। पाठकों के लाभ के लिये साक्षात्कार के कुछ हिस्से यहाँ पेश करना चाहती हूँ।

प्रश्न : ग़ज़ल कहाँ और कैसे अस्तित्व में आई?

उत्तर : बादशाहों, अमीर उमरावों आदि की प्रशंसा में लिखे जाने वाले कसीदे का पहले तो फारसीकरण हुआ, तत्पश्चात् ईरान के शायरों में उसकी तशबीब (शृंगारिक भूमिका) को कसीदे से अलग करके उसका नाम ग़ज़ल रखा (ग़ज़ल अर्थात् प्रेयसी से वार्तालाप) ईरान में यह विधा बहुत फूली-फली तथा लोकप्रिय हुई। वस्तुतः भारतवर्ष को यह विधा ईरान की ही देन है।

प्रश्न : अमीर खुसरो को हिंदी का पहला ग़ज़लगो शायर माना जाता है। इस पर आप को क्या कहना है?

उत्तर : अमीर खुसरो ने खिलजी शासनकाल में, उस समय की बोली जाने वाली भाषा में कुछ अरबी-फारसी शब्दों का मिश्रण करके एक नई भाषा विकसित की थी, जिसका नाम उन्होंने हिंदी/ हिंदवी रखा था और इस भाषा में उनके द्वारा कुछ ग़ज़लें भी कही गईं थीं, इसलिये उनको हिंदी भाषा का आविष्कारिक तथा हिंदी का पहला ग़ज़लगो शायर माना जाता है। यह और बात है कि हिंदी के काव्य क्षेत्र में बालस्वरूप राही, शेरजंग गर्ग, सूर्यभानु गुप्त आदि ग़ज़ल लिख रहे थे, परंतु इसे स्थापित करने का श्रेय दुष्यंतकुमार को प्राप्त हुआ है।

प्रश्न : ग़ज़लिया शायरी में क्रमिक विकास में किन शायरों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है?

उत्तर : प्रारंभिक दौर के कुछ उल्लेखनीय शायर- आरज़ू, मज़हर, हातिम, नाजी, यकरंग आदि थे। यह दौर ईमामगोई का था। शायर अपने कलाम में ऐसे शब्द लाते थे जो दो अर्थ देते थे -एक पास का और दूसरा दूर का, किंतु शायर की मुराद दूर के अर्थ से होती थी। इस प्रकार शेरों को वर्ग पहेली बना दिया जाता था। संतोष की बात है, विरोध के कारण ईमामगोई अधिक समय तक नहीं चली।

दूसरे दौर में पूर्वार्ध में सौदा, मीर, सोज और दर्द जैसे उस्ताद शायर हुए हैं। इन शायरों में "मीर"सर्वोपरि हैं। उन्हें खुदाये-सुखन कहा जाता है। इसी दौर में उत्तरार्द्ध में मुसहफ़ी इंशा, जुर्रत का नाम उल्लेखनीय हैं। इंशा और जुर्रत की शायरी अवध की विलासिता से प्रभावित है, जब मुगलिया सल्तनत के कमज़ोर होने के कारण, बाहरी आक्रमणों, लूटपाट और नादिरशाही कत्ले- आम से दिल्ली उजड़ती जा रही थी, तो सौदा, मीर, सोज़, मुसहफी और इंशा को, वहाँ संरक्षण न मिलने के कारण लखनऊ जाना पड़ा था जो नवाब आसफुद्दौला के साथ विलासिता मं् डूबा पड़ा था।

तीसरे दौर में पूर्वार्ध में, लखनवी शायरों में नासिख और आतिश के नाम उल्लेखनीय हैं, दोनों ही लखनवी रंग के प्रसिद्ध शायर थे। दूसरी ओर देहलवी शायरों में जौक, मोमिन और

मिर्ज़ा ग़ालिब थे। मिर्जा दाग़ और बादशाह जफ़र उस्ताद जौक के शिष्य थे, शेफ़्ता उस्ताद मोमिन के शिष्य तथा हाली मिर्ज़ा ग़ालिब के शिष्य थे। मिर्ज़ा ग़ालिब ने अपनी गज़लिया शायरी में इतना सब कुछ कह दिया था, कि दूसरों के कहने के लिये कुछ बचा ही नहीं। आगे चलकर असगर, फानी, इसरत, सीमाब और जिगर ने इस शून्य को भरने का प्रयास किया। सबसे बड़ा नाम दाग ने कमाया जिनके हज़ार से अधिक शिष्यों में, सर इकबाल, सीमाव अकबरावादी, जिग़र मुरादाबादी जैसे अज़ीम शायर शामिल है। हाली ने इश्किया किस्म की शायरी का जम कर विरोध किया और उसके स्तर में सुधार लाने का आहवान किया।

प्रश्न : देहलवी और लखनवी शायरी में क्या अंतर है? बताएँ।

उत्तर : देहलवी शायरी में प्रेमी का उसके सच्चे प्रेम तथा दुख-दर्द का स्वाभाविक वर्णन होता है, जब कि लखनवी शायरी अवध की उस समय विलासता से प्रभावित रही। अतः उसमें प्रेम को वासना का रूप दे दिया गया तथा शायरी प्रेमिका के इर्द -गिर्द ही घूमती रही। वर्णन में कृत्रिमता एवं उच्छृंखलता से काम लिया गया। अब लखनवी शायरी में सुधार आ गया है। इससे मुग़ल काल में ग़ज़ल की दशा तथा उसके स्तर पर भी समुचित प्रकाश पड़ता है।

प्रश्न : गज़ल की तकनीक एवं उसकी संरचना पर प्रकाश डालने का कष्ट करेंगे?

उत्तर : ग़ज़ल की बाहरी संरचना में छंद-काफ़िया-रदीफ़ का महत्वपूर्ण योगदान हैं। छंद को अथवा बहर, रचना का सही छंदोबद्ध होना ज़रूरी होता है, साथ में छंद-बहर की विशिष्ट लय का निर्वाह भी आवश्यक है। ग़ज़ल की काफ़ियायुक्त प्रारंभिक दो पंक्तियों को "मतला" तथा अंतिम दो पंक्तियों को,जिसमें शायर अपना उपनाम लाता है उसे "मक़्ता" कहते हैं। काफ़िया तुकांत शब्द को कहते हैं। रदीफ़, काफ़ियों के पश्चात आने वाला वह शब्द अथवा वाक्य है, जो ग़ज़ल में बिना किसी परिवर्तन के दोहराया जाता है। चूंकि मतके में प्रयुक्त काफ़ियों पर, ग़ज़ल के अन्य काफ़िये आधारित होते हैं, अतः मतले में सही काफ़िये आयें, यह देखना ज़रूरी है। जैसे -

१. मतले में या तो दोनों काफ़िये विशुद्ध मूल शब्द हों, जैसे-

हर हक़ीक़त में बआंदज़े-तमाशा देखा
खूब देखा तेरे जलवों को मगर क्या देखा।

२. एक विशुद्ध मूल शब्द और दूसरा बढ़ाया हुआ शब्द, जैसे -

जब से उसकी निगाह बदली है
सारी दुनिया नयी-नयी सी है।

३. दोनों ही बढ़ाये हुए अंश निकाल देने पर समान तुकांत शब्द शेष बचें, जैसे -

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिये
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिये।

४. दोनों बढ़ाये हुए शब्दों में व्याकरण भेद हो, जैसे -

देख मुझ को यूँ न दुश्मनी से
इतनी नफ़रत न कर आदमी से।

५. यदि मतले में ख़फा-वफ़ा जैसे अथवा मन-चमन जैसे काफ़िये लाये जाते हैं तो उस अवस्था में क्रमशः "फ" व्यंजन-साम्य वाले काफ़िये ही पूरी ग़ज़ल में लाये जायें या अपवाद स्वरूप उनकी जगह अन्य व्यंजन भी लाये जा सकते हैं, जैसा कि डा॰ इकबाल अपनी एक ग़ज़ल में लाये हैं, -

फिर चिराग़े-लाल से रौशन हुए कोहो-दमन
मुझको फिर नग्मों पे उकसाने लगा मुर्गे-चमन।

मन की दौलत हाथ आती है तो फिर जाती नहीं
तन की दौलत छाँव है, आता है धन जाता है धन।

इस ग़ज़ल के अन्य काफ़िये है बन, फन, तन आदि। काफ़िया-शास्त्र बड़ा है यहाँ केवल मुख्य-मुख्य बातें ही बताई जा सकती है। सबसे महत्वपूर्ण है ग़ज़ल के अन्तरंग की संरचना, जिसके माध्यम से शायर अपने मनोभाव, उद्गार, विचार, अनुभव, दुःख-दर्द तथा अपनी अनुभूतियाँ आदि व्यक्त करता है, अतः अन्तरंग बहुत ही धीर-गंभीर , अर्थपूर्ण तर्कसंगत तथा अंतरमन की गहराई से प्रस्फुटित होने वाला होना चाहिये। अंतरंग को जितना परिष्कृत किया जाए, उतना ही वह प्रभावशाली बनता है। तगज़्ज़ुल, अंदाज़े-बयाँ कुछ ऐसा हो कि शेर की पहली पंक्ति सुनने पर हम दूसरी पंक्ति सुनने को लालायित हो उठें तथा उसे सुनते ही अभिमूत हो जाएँ। यह प्रसंग बहुत बड़ा है अतः इसे यहाँ इतना ही दिया जा सकता है।

प्रश्न : अच्छी ग़ज़ल की विशेषताएँ?

उत्तर : ऊपर ग़ज़ल के अन्तरंग के बारे में जो बातें बताई गई हैं तथा उनके अतिरिक्त ग़ज़ल समसामयिक, जनोपयोगी तथा अपनी धरती और परिवेष से जुड़ी हो, कथ्य एवं शिल्प में सामंजस्य हो, भाषा सरस-सरल हो। पाठकों एवं श्रोताओं में वही भाव सम्प्रेषित हो, जो ग़ज़लकार व्यक्त करना चाहता है, और सबसे बड़ी बात यह कि वह अंतरमन में गहरे उतर जाए, कुछ सोचने को विवश करे, जिसके शेर उदाहरण स्वरूप पेश किये जा सकें तथा जिसके शब्दों के उच्चारण प्रामाणिक हों, बहर में हो अथवा सही छंदोबद्ध हो।

प्रश्न : हिंदी में लिखी जा रही ग़ज़ल के विषय में आपकी क्या राय है?

उत्तर : दुष्यंत कुमार ने हिंदी ग़ज़लों की अच्छी शुरुआत कर गये हैं, उनके बाद से हिंदी में ग़ज़ल- लेखन अबाध रूप से चल रहा है। अच्छी ग़ज़लें सराही भी जा रही हैं, आगे उन पर अधिक निख़ार आएगा, ऐसी अपेक्षा है।

प्रश्न : हिंदी ग़ज़लों में उर्दू शब्दों का प्रयोग किस सीमा तक होनं चाहिये?

उत्तर : जहाँ बात न बनती हो, वहाँ उर्दू शब्द आने से बात बन जाए, तब वहाँ उर्दू शब्द लाना ही चाहिये, परंतु उसके सही उच्चारण के साथ, क्योंकि लबो-लहज़ा उर्दू शब्दों के उच्चारण से ही बनता है, इसके लिये उर्दू शब्दों के हलन्त अक्षरों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

प्रश्न : आजकल दोहा छंद में ग़ज़ल लिखने का प्रयोग हो रहा है, क्या यह उचित है? यदि हाँ तो क्यों?

उत्तर : आश्चर्य तो इस बात का है कि जब ग़ज़ल को दोहे से प्रेरित बताया जा रहा है तो ग़ज़ल-लेखन में उसका प्रयोग अब इतनी देरी से क्यों किया जा रहा है, पहले क्यों नहीं किया गया? ग़ज़लों को सभी अच्छी बहरें और अच्छे छंद ग्राह्य हैं, बशर्ते कि वो संगीतात्मक हो। दोहा छंद भी अच्छा छंद है और इसकी दोनों पंक्तियाँ तुकांत होने के कारण ग़ज़ल के मतले के अनुरूप भी है। हाँ, ग़ज़ल की स्वतंत्र पंक्तियों को दोहों में किस प्रकार फिट किया जाएगा, यह विचारणीय है।

प्र**श्न : क्या ग़ज़लों की कुछ बहरें काव्य-छंदों से समकक्ष हैं? कृपया उदाहरणों सहित बतायें**?

उतरः कुछ प्रचलित बहरें ऐसी हैं जो हिंदी वाक्य छंदों के समकक्ष हैं। जैसे-

१. मानव भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती
   बहरे-रजज् /हरिगीतिका

२. हाँ, कमल के फूल पाना चाहते हैं इसलिये

बहरे-रमल /गीतिका

३. कमल बावना के तुम्हें है समर्पित
बहरे-मुतकारिब / भुजंगप्रयात

४. मेघ आकर भी बरसे नहीं
बहरे-मुतदारिक / महालक्ष्मी

५. परिंदे अब भी पर तोले हुए हैं
बहरे-रजज्/सुमेरु

ऐसे ही और भी बहरों के समकक्ष, हिंदी छंदों के उदाहरण दिये जा सकते हैं।
भाग 5 ग़ज़ल एक सुकोमल विधा है। वह नफ़ासत पसंद है। हाथ लगाए मैली होती है, उसे स्चच्छता तथा सलीके से स्पर्श करना होता है। ग़ज़ल चूँकि एक गेय कविता है, अतः उसका किसी बहर अथवा छंद में होना अपरिहार्य है। ग़ज़लकार को इसके लिये, यदि रचना बहर में है तो "तख़्ती" का, और अगर छंद में है तो मात्रा गणना का व्यहवारिक ज्ञान एवं अभ्यास होना ही पर्याप्त है, जो कोई कठिन कार्य नहीं। अतः इसके लिये ग़ज़लकार को अरूज़ी अथवा छंदशास्त्री बनने की बिलकुल भी आवश्यक्ता नहीं है, इस पुस्तक में 'तख़्ती ' तथा 'मात्र- गणना' की विधियों को, उदाहरणों सहित, विस्तार से समझाया गया है। अतः इन विधियों को सीखने के लिये कहीं दूर जाने की ज़रूरत नहीं। निरंतर अभ्यास से इनमें दक्षता प्राप्त की जा सकती है।

बहर अथवा छंद, ग़ज़ल की पहली प्राथमिकता है। "कविता और छंद का संबंध उसी प्रकार का है जिस प्रकार आत्मा और शरीर का। आत्मा की सक्रियता शरीर के द्वारा ही है। इसी प्रकार कविता की प्रभावोत्पादकता भी छंद के द्वारा ही है।"

ग़ज़ल तो एक गेय कविता है, अतः उसमें छंदों की महत्वपूर्ण भूमिका है। बहर अगर ग़ज़ल की जान है तो छंद ग़ज़ल के प्राण। ग़ज़ल का फार्म (स्वरूप) बहर अथवा छंद बिना निष्प्राण है। यदि उसको जिंदा रखना है तो उसे हर प्रकार स्वस्थ रखना हमारा दायित्य बनता है। ग़ज़ल के बहर और छंद के बारे में इससे ज़्यादा और क्या कहा जा सकता है। अब यह ग़ज़लकारों पर निर्भर करता है कि वे बहर के लिये 'तख़्ती' करना अथवा छंद के लिये 'मात्र-गणना' सही-सही करना मन लगाकर सीखें और ग़ज़लों में प्राण फूँकें और उन्हें तरोताज़ा बनाये। 'तख़्ती' और 'मात्र-गणना' की विधियाँ आगे यथास्थान दी जा रही है।

अब ग़ज़ल का फार्म, बाह्य (बाह्य स्वरूप) कैसा होता है तथा 'ज़मीने शे'र' किसे कहते हैं, काफ़िये क्या होते हैं, रदीफ़ क्या होती है, मत्ला क्या होता है, हुस्ने मत्ला क्या होता है, तथ मक्ता क्या होता है, शेर क्या होता है। हुस्ने मतला क्या होता है, तथा मक्ता क्या है। इन सवालों का स्पष्टीकरण आइये शुरू करते हैः

मान लें हमें निम्नलिखित मिसरे के आधार पर ग़ज़ल लिखने के लिये कहा गया-

'हाल कोई तो पूछता मुझसे'

वस्तुतः इस पंक्ति के आधार पर हिंदी पत्रिका फनकार, ग्वालियर के अंक फरवरी २००५ में पाठकों द्वारा कही गई कई ग़ज़लें प्रकाशित हुई हैं। जनाब कमरउद्दीन बरतर साहब का यह अभिनव प्रयोग है, जो हर दृष्टी से सराहनीय है। उपर्युक्त मिसरे में प्रयुक्त क्रिया (तुकान्त शब्द) पूछता है और उसके पश्चात आने वाली रदीफ़ (जो पूरी ग़ज़ल में अपरिवर्तित ही रहती है) मुझसे है। मिसरे का वज़्न हैः बहरे-ख़फीफ़ अर्थात फाइलातुन, मफाइलुन, फालुन /फ-इलुन। इस वज़्न के अंत में फालुन और फ-इलुन के आख़िर में एक एक शब्द, आवश्यकतानुसार बढ़ाया जा सकता है। जिस किसी वज़्न में शुरू में फाइलातुन आता है, उसमें एक अक्षर कम करके, फ इ ला तु न भी आवश्यकतानुसार लाया जा सकता है। अतः उपर्युक्त मिसरा-वज़्न /बहर +का़फिया+रदीफ प्रस्तुत करता है, इसी को ज़मीने शे'र कहते हैं

रदीफ़ काफिया को समझाने के लिये मोना हैदराबादी का यह शेर पाठनीय है-

साथ देके रदीफ़ आगे आगे चली
काफ़ियों को लेकर चली है ग़ज़ल।

इस बयाँ को साकार करते हुए 'हाल कोई तो पूछता मुझसे' के आधार पर फनकार पत्रिका में पाठकों की जी जो ग़ज़लें पेश हुई हैं, उनसे कुछ ग़ज़लें, कुछ अंश साभार यहाँ पेश हैं ताकि ग़ज़ल के फार्म को सरलतापूर्वक समझा जा सके -

१. राज साग़री, खरगोन (म.प्र.)

खुद पे कैसे हो तब्सिरा मुझसे
दूर रखो ये आईना मुझसे।..मतला

उसकी आँखों ने क्या कहा मुझसे

उम्र भर मैं रहा ख़फ़ा मुझसे।..हुस्ने मतला

खून के घूँट पीके बैठा हूँ
ज़हर का पूछ ज़ायका मुझसे।

कौन था 'राज़', आईना चेहरा
जिसने मुझको मिला दिया मुझसे।..मक़्ता

°°

२.म.ना. नरहरि, विरार(महाराष्ट्र)

था अगर शिकवा या गिला मुझसे
हाल कोई तो पूछता मुझसे।

जिस्म मिट्‌टी सा कर दिया मेरा
तोड़कर उसने सिलसिला मुझसे।

°°

३. शैलजा नरहरि, विरार (महाराष्ट्र)

बाद मुद्‌दत के वो मिला मुझसे
हाल कोई तो पूछता मुझसे।

बाँधने की फिज़ूल कोशिश की
छूटना तय ही था सिरा मुझसे।

रोशनी को फरेब देना था
तीरगी ने लिया पता मुझसे।

°°

४. मरियम ग़ज़ाला, थाने (महाराष्ट्र)

इस तरह आज वो मिला मुझसे
हो नहीं जैसे आशना मुझसे।

दे गया धूप की मुझे चादर

ले गया रात की रिदा मुझसे।

कुछ 'गज़ाला' मुझे रही रंजिश
कुछ तो उसको भी था गिला मुझसे।
◦◦
५. डा◦ नलिनी विभा नाज़ली, हमीरपुर (हि।प्र)

दोस्त रखते जो राब्ता मुझसे
हाल कोई तो पूछता मुझसे।

मेरी कश्ती डुबा ही दी आख़िर
था खफ़ा मेरा नुख़ुदा मुझसे।

'नाज़ली' बनके किस कदर मासूम
पूछता है वो मुद्दआ मुझसे।
◦◦

६.द्विजेन्द्र द्विज, कांगड़ा (हि.प्र.)

अब है मेरा मुकाबला मुझसे
मेरा साया तो डर गया मुझसे।

इंतिहा द्विज न जाने क्या होगी
देखी जाए न इब्तिदा मुझसे।
◦◦
७. दा. विनय मिश्र, अलवर (राजस्थान)

रात ने जाने क्या सुना मुझसे
ले गई धूप का पता मुझसे।

जैसे गुल में समाई है खुशबू
वो कहाँ है भला जुदा मुझसे।
◦◦

७. जनाब कमरउद्दीन सा॰ बरतर, गव्लियर(म.प्र.)

अब मुख़ातिब है आईना मुझसे
अब मेरा सामना हुआ मुझसे।

वो जो पत्थर ही मुझको समझेगा
दूर ही दूर जो रहा मुझसे।

पूछने वाले की तरह बरतर
हाल कोई तो पूछता मुझसे।

बकौल अमरजीत सिंह अंबाली के शेर की ज़ुबानी-

मत्ले से मक़्ते तलक की ये मसाफ़त महरबा!
दर्द से रिश्ते में जैसे ग़म पिरोती है ग़ज़ल।

शब्दार्थः मसाफ्त= सफ़र

और आगे......**[*अंक ५*]**

ग़ज़ल के अन्य काफ़िये, मत्ले में नियमानुसार प्रयुक्त काफ़ियों पर आधारित होते हैं। अतः मत्लों में काफ़िये प्रयुक्त करते समय पूरी सावधानी बरतना बहुत आवश्यक है। अन्यथा मत्लों के दोषपूर्ण होने का अंदेशा बना रहता है।

१. ईता दोष

काम कब शीघ्रता में बनता है
इस तरह और भी बिगड़ता है।

उस मतले में 'बनता-बिगड़ता' क़ाफ़िये लाये गये हैं, जो दोषपूर्ण है, क्योंकि यदि इन दोनों शब्दों से 'ता' निकाल दिया जाय तो 'बन-बिगड़' (मूल शब्द) शेष रहते हैं, जो समान तुकांत काफ़िये नहीं है, क्योंकि इनके अंतिम अक्षरों 'न' और 'ड' में व्यंजन-साम्य नहीं है। अतः केवल 'ता' बढ़ाने मात्र से ये शब्द समान तुकांत काफ़िये नहीं बन जाते। इसलिए 'बनता-बिगड़ता' को मत्ले में लाने से मत्ला दोषपूर्ण हो गया है। मूल शब्दों में से बढ़ाये हुए अंश निकाल देने पर, उनका तुकांत होना आवश्यक है। यदि पहली पंक्ति को इस प्रकार कर दें-

काम जल्दी में बन न पाया है
इस तरह और भी बिगड़ता है।

इस प्रकार पाया और बिगड़ता के अंत में स्वर-साम्य या-ता होने से काफ़िये दोषरहित बन जाते हैं और मत्ले के दोष का निराकरण हो जाता है।

२.
हमारे युग में सुविधाएँ बहुत हैं
समय के पास छलनाएँ बहुत हैं।

डा॰ स्वामी श्यामनंद सरस्वती 'रौशन'

इस मत्ले में सुविधाएँ- छलनाएँ काफ़िये लाये गये हैं। इनमें से बढ़ाया हुआ शब्द 'एँ' निकाल देने पर सुविधा-छलना शेष रहते हैं, जो दोनों ही समान तुकाँत शब्द हैं, क्योंकि उनमें धा-ना में स्वर-साम्य है। अतः सुविधाएँ-छलनाएँ दोषरहित क़ाफ़िये हैं।

३.

करें सम्मान हम अपने बड़ों का
उठायें लाभ उनके अनुभवों का।

यद्यपि बढ़ाये हुए अंश निकाल देने पर 'बड़' तथा 'अनुभव' शेष रहते हैं, जो समान तुकांत शब्द नहीं है। अतः 'बड़ों- अनुभवों' सही क़ाफ़िये हैं। ऐसे क़ाफ़ियों में से बढ़ाया हुआ अंश निकाल देने पर एक सार्थक तो दूसरा निर्थक शेष रहना चाहिये।

४.

था अगर शिकवा या गिला मुझसे
हाल कोई तो पूछता मुझसे।

म.ना. नरहरि

गिला मूल शब्द है जब कि 'पूछता' में 'ता' का अंश बढ़ाया हुआ है। 'ला - ता' में स्वर साम्य है अतः काफ़िये नियमानुसार हैं।

५.

दोस्त रखते जो राब्ता मुझसे
हाल कोई तो पूछता मुझसे।   ' -

इसी प्रकार उपयुक्त मत्ले में डा॰ नलिनी विभा 'नाज़ली' द्वारा एक विशुद्ध मूल उर्दू शब्द 'राबता ' को काफ़िया बनाया गया है तथा दूसरे क़ाफ़िया 'पूछता' को, जिसमे 'ता ' बढ़ाया हुआ अंश है। अतः मत्ले में ये दोनों ही काफ़िये नियमानुसार लाये गये है।

मुखपृष्ठ

9

आस्थाओं की व्यापकता व अनुभवों के आईने में श्री राधेश्याम शुक्ल

देवी नागरानी

डा॰ बालक्रष्ण पांडेय का सिद्धांत रूप से यह कहना है "विचार प्रतिक्रिया ही रचना है, रचना ही विचारों की समावाहिका होती है. लेखक अपनी विचार प्रतिक्रिया ही रचना में ढालता है, इस लिये रचना विचारा अभिव्यक्ति का साधन है. और लेखक का व्यक्तिगत जीवन, उसकी विचार प्रतिक्रिया के निर्माण का हेतू होता है, क्योंकि लेखक का व्यक्तित्व ही विचारों का उद्भावक होता है, इसलिये व्यक्तित्व के निर्माण से ही विचारों का निर्माण होता है."

राधेश्याम शुक्ल व्यक्ति नहीं, गीत नवगीत ग़ज़ल, दोहा, के एक विध्यालय हैं। उनके रचना संसार का क्षितिज विस्तृत व अत्यंत व्यापक है। उनकी भाषा विचलनपरक शब्दों तथा लक्षणिक शब्दावली के कारण रसमयी और बिलक्षण हो उठती है। उनके गीतों में संवेद्नात्मक

तरलता, नवीन भाषिक प्रयोग, अभिनव और आकर्षक बिम्ब-विधान, सहज व हृदयस्पर्शी, जीवन से लिए गए प्रतीक हैं। गीत एक संगीतात्मक रचना है जो तन्हाइयों में या महफिलों में गुनगुनाई जाती है, उसे ही अनुभूति और अनुरक्ति का श्रीनगर मानकर गीत को संबोधित करते हुए वे कहते हैं-----

शोध मुखरित आपसी/ संवाद दिन दिन मौन

अजनबी मेरे लिए/ कैसे बुहारे कौन

गीत एक ललित काव्य विधा है। उसकी उपज में 'टेक्निक' वहीं तक उपेक्षित है जहां तक गीत की शब्दावली जटिलता को सहजता में तब्दील करती है। गीत आज भी अपनी समग्रता लिए पूरे जनजीवन की संवेदना को आत्मसात करता, पूरे मानव जीवन के परिवेश को अपने में समाये झूमता गाता आ रहा है। उनके एक गीत का यह मुखड़ा अनकही व अनुछुई गुत्थी को सुलझा रहा है----

अनसुनी रह गई राग की बांसुरी

अनछुई रह गई फूल की पांखुरी

गीत में यह सहज गुण है कि वह अपनी लयात्मकता के कारण हृदय में अपना स्थान बना लेता है, गुनगुनाने पर धड़कनों में घुल-मिल जाता है। समय को व्याखित करना, उसका आकलन करना आज की गीत कविता का प्रमुख सरोकार है। आज कविता अपना स्वरूप ग़ज़ल, दोहे, मुक्तक, नवगीत, रुबाई के रूप में पा रही है। जीवन के अनेक पक्षों को शब्दों में साकार करने में सक्षम, राधेशयम जी की रचनाएँ उनके अनुभवों का नोचोड़ है, सार्थक चिंतन मनन का प्रतिफल है।

राधेश्याम शुक्ल की प्रकाशित कृतियों में पंखुरी-पंखुरी गुलाब, त्रिविधा, एक बादल मन, दर्पण वक़्त के (दोहा संकलन), ज़रा सी प्यास रहने दे(ग़ज़ल संकलन), देशराग एवं 'कैसे बीने चदरिया' शामिल है। इनमें गीतों और नवगीतों की भाषा आज के आम आदमी की भाषा है, सरल, समझने में आसान, हृदय से निकल का हृदय तक पहुँचने वाली। शब्दों की सरलता एवं सहजता अभिव्यक्ति में मन के आत्मविश्वास को दर्शा रही है॰ उनके संग्रह 'कैसे बुनें चदरिया साधो' में डॉ. सुरेश गौतम ने अपनी लिखी प्रस्तावना में ज़ाहिर किया है कि विचार तत्व को भावपरक बनाने के लिए तीन चीजों कि आवश्यकता है-अनुभव, ज्ञान और अभिव्यक्ति की

क्षमता। राधेश्याम शुक्ल की कलम-नोंक पर इस त्रिवेणी का कोई कोण अदृश्य नहीं है। काव्य में संवाद सा स्वाद भी इनकी गीत सम्पदा में आसानी से देखा जाता है -

राजधानी की तरफ़ / मत जाइएगा / मीत मेरे! उस तरफ़ दलदल बहुत है!

अँग्रेजी के मशहूर नक़ाद हडसन का मानना है कि- Poetry is criticism of Life. It is interpretation of life through imagination and Emotion. कविता सिर्फ़ वही नहीं होती जो कवि लिख देते हैं। कविता आत्मा की फुसफुसाहटों से बनी वह महानदी भी है, जो मनुष्यता के भीतर बहती है। कवि सिर्फ़ इसके भूमिगत जल को क्षण-भर के लिए धरातल पर ले आता है, अपनी खास शैली में, अर्थों और ध्वनियों के प्रपात में झराता हुआ।

कविता वही जो खुद को पढ़वाकर पाठक के साथ एक गहरा आत्मीय रिश्ता क़ायम करने में सफ़ल हो, एवं जनजीवन के मनोभावों को अभिव्यक्त करने में ही कविता की सार्थकता है। उनकी अनुभूति-अभिव्यक्ति की परस्पर परिपूरकता के संवेदना भरे बिम्ब हमसे सीधा बतिया रहे हैं। काव्य की शब्दावली में कहीं अहसासों के तहों में तैरती पीड़ाएँ शामिल दिखाई देती है, कहीं ग़म की लोरियाँ दस्तक देती हैं, कहीं खुशियाँ रक्स करती है, और कहीं-कहीं तो मूकता अपना परिचय भी लफ़्ज़ों में डूबकर देती है।

बेतुके शोर के लोग आदि हैं हुए / हो विरस खो गई गीत की माधुरी

रामधारीसिंह दिनकर जी कविता को परिभाषित करते हुए लिखा है- "कविता मनोरंजन नहीं, आत्मानुशासन का उन्मेष है।" रचना पर शिल्प का हवी हो जाना कथ्य की चरमराहट का कारण बन सकता जाता है। इस बात का धन रखते हुए ही शायद राधेशयम जी ने अनचाहे शब्दों की खलबली से अपनी रवहनाओं को बचाकर रखा है। इसे लिए उनकी कविता की भाषा सीधी सरल है और मानवीय गुणों के साथ जन जन को अपनी सी लगाने लगती है।

उनके रचना संसार का विस्तार बहुअयामी है -इसमें रिश्ते नाते, प्यार-दर्द, विरह-पीड़ा, बाज़ारवाद, भ्रष्टाचार, रिश्तों के बीच व्याप्त अपनाइयत- ग़ैरत को शब्दों में बुनकर अपने मन की समस्त भावनाओं को सामने रख दिया है। विडंबनाओं का व्याकरण व्यक्त करने के लिए भावों, अनुभवों एवं शब्दों का सहारा लेते उन्होने दोहे लिखे हैं जो हर संदर्भ का आधुनिक बोध लिए हुए है। उनके अपने शब्दों में दोहे अपने समय की तक़रीर है। युगीन अमानुषी भावनाओं,

व्यवहारों, और परिस्थियों के प्रति इनमें जुझारू आक्रोश है, प्रतिकार है, प्रतिवाद है। देखिये उनकी इस बानगी में---

महानगर में मैं बसा, मुझमें मेरा गाँव / जिये जा रहा हूँ रखे, दो नावों में पाँव

बस्ती-बस्ती रेत है, चेहरा- चेहरा प्यास/ है पानी के नाम पर, पानी का इतिहास

दहशत ज़ारी कर रही, रोज़ नए फ़रमान/ रोज़ जंगली डर उगें, शहरों के दरम्यान

नवगीत की मानिंद नए दोहे में भी परंपरा और आधुनिकता के तनावपूर्ण द्वंद्व को भली भांति लक्षित किया गया है। ग्रामीण और शहर के वातावरण की अनुकूलता दिखाई देती है, परिस्थितियां सामने मंज़र बन कर आ जाती हैं। विपरीत वायूमंडल, कुनीतियों पर प्रहार करती उनकी कलम की धार दक्षता के साथ घटित अवस्थाओं व हादसों को भी रेखांकित कर रही है। ऐसे दौर में समय को व्याख्यायित करना, उसका आकलन करना आज की गीतवाटिका का प्रमुख सरोकार है। यह सफल प्रयास शुक्ल जी की धारदार कलम ने किया है। ऐसे ही मनोभावों की कश्मकश इन शब्दों में आँकिए---

अम्माँ दंगे में मरी, पिता जल गए आग/ मैं नित मरुथल हो रहा, सुनसुन बादल राग

अरी प्रजा तू तंत्र से नाहक करती रश्क/ भूख लगे, खा आंकड़े, प्यास लगे पी अश्क

बम फटते हैं, बरबादियां सिर्फ़ व सिर्फ़ आम आदमी के दामन को भस्म करती है, खास आदमी तो शीशों के महलों में दरबानों की हिफाज़त में सुख की सांस ले रहे हैं---

चोट पत्थर की सहेंगे सिर्फ़ माटी के मकां /शीश महलों की हिफाज़त में खड़े दरबान हैं

तुच्छ खुशियाँ मांगती कितनी बड़ी कुर्बानियाँ/ खून से लथपथ हुआ है उनको पाने में बशर

आदमी का दर्द सागर-सा, बयां कैसे करें/है मिली हमको ग़ज़ल की एक छोटी सी बहर

सच में यह अल्प मौक़ा मिला है, बहुत कुछ करने का, पर खेद है कि हम वही कर रहे हैं जो हमें नहीं करना है, और जो करना है वह भूल बैठे हैं। मनोस्थिति, मनोवृति यही सब कुछ करने की दिशा में ले जाती है, करवाती है। फिर भी राधेश्याम शुक्ल जी ने अपनी आस्था को निश्चित ही एक भविष्योन्मुखी आयाम दिया है।

नेपोलियन ने कहा है- "दुनिया में दो ही ताक़तें हैं-एक तलवार और दूसरी कलम; किन्तु अन्तत: तलवार कलम से हार जाती है।" राधेशयम शुक्ल इसी कलम के वारिस हैं। जिया गया आदर्श, काव्य सौंदर्य तथा कथ्य और शिल्प का अद्भुत तालमेल पाठक की उत्कंठा को जगाये रखने के लिए बहुत हैं। "कैसे बुनें चदरिया" में उनकी रचनाएँ समाज में रहते हुए, गुज़र-बसर करते हुई मानवता से संवाद करती हुई शैली का स्वरूप है-

कैसे बुनें चदरिया साधो / उलझ गए हैं ताने-बाने

यह उधरा परिवेश, ढँकेगा-/ कल की कौन, राम जी जाने !!

दलदल में धँसे सामाजिक प्राणी की व्यथा को परिभाषित करते हुए वे लिखते हैं ---

भूमंडलीकरण ले आया / *मेरे गाँव उजास*

लेना देख, हँसेगा हम पर / कल, यह नया विकास

संवादों की भीड़ में /किन्तु संवेदन एक नहीं / गाने को हैं गीत/ एक भी मनहर 'टेक' नहीं

कुर्सियों के माध्यम से उनकी ही क्रूरता और कुटिलता को रेखांकित किया है---

आँसू से हैं नहीं पिघलती/ ये कलमुँही कुर्सियाँ शातिर

घर आँगन ही नहीं / चारदीवारी टूट गई /दरवाज़े , खिडिकियाँ, झरोखे

सहमे देख रहे हैं/ डोर समय की/ बूढ़े हाथों से है छूट गई

शब्द मानवता के प्रतीक बनकर सामने आए हैं। उनके व्यक्तितत्व व कृतित्व को जान पाने की मेरी इस कोशिश की एक पहल ने मुझे उनके ज्ञान के सागर के किनारे लाकर खड़ा कर दिया है, जहां उनकी रचनावली, उनकी शब्दावली मेरे सहराई मन को और बहुत जान पाने की राह पर ले आई है। शत-शत नमन उनकी मानवता के सद्गुणों से महकती उस शख्सियत को जिसकी ओट में खड़ी "मैं अंधेरे में सही, रोशनी की सोचता हूँ" वाली मनोस्थिति में यही तमन्ना लिए हुए है -

क़द जो ऊंचा करना है तो मेरे शाने हाज़िर हैं

बौनेपन का ऐब छुपेगा बोलो पंजों के बल कितनी देर.... जयहिंद

देवी नागरानी

[मुखपृष्ठ]

10

सागर अपने आप में एक परिचय

"हर एक लफ़्ज़ से कानों में शहद घोल गया

ये कौन है जो उर्दू ज़बान में बोल गया"

अल्फ़ाज़ जब भी मौन को मुखरित करते हैं तब खामोशियां भी उन्हें सुनने को बेताब हो उठती हैं। ऐसे ही तासीर लिए हर दिल अज़ीज़ शायर सागर त्रिपाठी की रचनाएँ उनका असली परिचय है और उनकी आवाज़ की बुलंदी एक गूंज बनकर ध्वनित होती है--

ग़ज़ल अगर बेलौस मदमाती लहर है तो मैं,

साकित थमा हुआ 'सागर' खूब निभती है दोनों की।

सागर से मेरी पहली मुलाक़ात 2007 में श्री आर. पी. शर्मा 'महरिष' जी के निवास स्थान पर हुई। बहुत जल्द ही उनकी अपनाइयत ने उन्हें मेरा अनुज बना दिया। और यह कहने में अतिशयोक्ति न होगी कि सागर की विनम्रता में उसकी शालीनता है, और यही उसका परिचय भी।

एक रवायत जिससे सागर बख़ूबी वाक़िफ़ है वह है शायरी के लिए उनकी बेइंतेहा मुहब्बत। इस क़दर डूबकर लिखने वाले शायर के लिए क़लम भी कह उठती है.....

जो लफ़्ज़ों को सच की सियाही से लिख दे

क़लम से भी होती है ऐसी इबादत ! -स्वयं रचित

साहित्य के विस्तार में अंग्रेज़ी में पढ़ी ये पंक्तियाँ मुझे याद आतीन हैं , जिसका भावार्थ यही है- 'कवि को हर तरह की फ़िलासफ़ी पढ़नी चाहिए, पर कविता लिखते समय सबको भुला देना चाहिए।' और होना भी ऐसा ही कुछ चाहिए, जानी मानी कहावत है-जहां न पहुंचे रवि, वहीं पहुंचे कवि। कविता ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा कवि दुनिया को अपनी ही तरह देखता है, समझता है और जो कुछ वह अपने आस-पास घटता हुआ देखता है, उसे अपने जिये हुए पलों के साथ जोड़ते हुए भावनात्मक बिम्ब खींचता है, जिसमें सम्मान रूप से वह रसों की अनुभूति ज़ाहिर करता है-

क्षृंगार, हास्य, करुण, वीभत्स, वीर, अद्भुत
त्यों रौद्र, फिर भयानक है नवम शांत रस
कविता मात्र शब्द भर नहीं, रस पान भी है।
सागर जी की रचनात्मक शैली व शब्दों में रस का आभास स्पष्ट महसूस किया जाता है। इस बानगी में उनकी विशालता देखें-
मैं केवल आँसू की बूंदें
तुम अधरों की मृद मुस्कान!
जीवन के सफ़र में पग-पग क़दम आगे बढ़ाते हुए अहसासों को महसूस करते हुए कवि मन हँसता है, खिलखिलाता है, गाता है, रुदन, करुणा, दया, क्रोध सभी रसों की अनुभूतियों के दौर से गुज़रता है, उन्हें भोगता है। अपने जिये हुए अहसासों को अनुभूति से अभिव्यक्त में ज़ाहिर करने के लिए सोच को शब्दों के लिबास में प्रस्तुत करने में पहल करता है। जहां तक रस्म निभाने की बात आती है सागर जी लफ्जों के साथ-साथ सफ़र करते हैं, पीछे नहीं हटते।

काव्यानुभव में ढलने के लिये रचनाकार को जीवन पथ पर उम्र के मौसमों से गुज़रना होता है और जो अनुभव हासिल होते है उनकी सागर जी के पास कोई कमी नहीं है. जिंदगी की हर राह पर जो देखा, जाना, पहचाना, महसूस किया और फिर परख कर उनको शब्दों के जाल में बुन कर प्रस्तुत किया, उस का अंदाज़ अनोखा देखिये इस शेर में-

जज़्बए इश्क़ के उनवान बादल जाते हैं

हंस तो देता हूँ मगर अश्क भी ढल जाते हैं

कभी गर्दिशों में हूँ कभी तीरगी का मकान हूँ

कहीं बादलों का हमसफर कहीं पंछियों की उड़ान हूँ

ग़ज़ल सिन्फ़ अदब का आईना है जिसमें सामाजिक सरोकारों को भी संदर्भ में लेते हुए, ग़ज़ल के एक शेर में विविध विषयों पर सफलता पूरक रूप से ढाला जाता है। प्रकाश पंडित जी कहते हैं- ".....इसमें कोई संदेह नहीं कि एक काव्य रूप के लिहाज़ से ग़ज़ल सीमित भावनाओं की वाहक है। और यह इतनी मथी जा चुकी है कि अब इस में अधिक मंथन की बहुत ही कम गुंजाइश रह गई है।लेकिन जो लोग इस प्रकार की गुंजाइश निकाल सकते हैं उन्हें अपने विचारों को ग़ज़ल का पहनावा पहनाने का पूरा अधिकार है ..."और यह ग़लत भी नहीं है' यह क्षमता सागर जी की लेखनी दर्शाती है--

मेरे होंठों पे अपने लफ़्ज़ रख कर

हक़ीक़त खुद बताना चाहता है

घूमता हूँ आइनों के शहर में

खुद को देखे एक मुद्दत हो गई

सागर त्रिपाठी का नाम समकालीन रचनाकारों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है और उनके रचनात्मक विस्तार में ग़ज़ल, गीत, दोहे, मुक्तक, रुबाई आदि समोहित हैं। उन्हीं धड़कते हुए शब्दों में पाई जाती है राष्ट्रीय एकता, वतन की मुहब्बत व समाज में हो रही विसंगतियों की आवाज़ ! कुल मिलाकर पदध्य की सूक्ष्म संवेदनाओं के कवि व शायर सागर त्रिपाठी ने अपना दायित्व निभाते हुए अँधेरों को मिटाने की बेलौस कोशिश की है।

रोशनी जब मुल्क की सरहद पर कम होने लगे
तब लहू से लौ चरागों की जलानी चाहिए

मैं समुंन्दर की हदों को पार कर जाऊँ मगर
बस किनारे पर ज़रा लौ झिलमिलानी चाहिये

कभी ग़ज़लों, कभी दोहों के माध्यम से सामाजिक, संस्कृतिक व राजनीतिक विकृतियों, व मज़हब के बहरूपियों पर अपनी कलम से करारी चोट करते है

तेरे मेरे ज्ञान का सागर एक समान
मैं जिसको गीता कहूँ, तू कहता क़ुरआन

रामायण, गुरुग्रंथ हो बाईबल या क़ुरआन
दया, धर्म, करुणा, कृपा, सब में एक समान

कहीं -कहीं शब्दों का सहारा लेकर उस शब्द की ओर भी इशारा कर रहे हैं जो इस रचना का आधार है, इस शरीर में प्राण फूंकता है, जो अग्नि बनकर देह में ऊर्जा प्रवाहित करता है. कविता रुपी देह के गर्भ से इस प्रकाश का जन्म होना एक अनुभूति है, जहाँ शब्द, शब्द न रहकर एक ध्वनि बन जाएं और शरीर के माध्यम में आत्मा सा मंडराता रहे. बहुत मुबारक सोच है जो लक्ष को ध्येय मान कर शब्दों की उज्वलता को कविता में उज्गार कर रही है.

सागर जी की नवनीतम कृति 'शब्दबेध' क पन्ना दर पन्ना पलटते इस बात से वाकिफ हुए बिना रह पाना मुश्किल है, कि मौन का शब्द विलय, विलय शब्द लय, शब्द का मौन ही मृत्यु है। आंतरिक अभिव्यक्ति के लिए शब्द की ज़रूरत नहीं।

ज़ेहन बसा हिन्दू धरम, दिल में है इस्लाम

धड़कन में रहमान है, मन में बसते राम

इन दोहों की रचनात्मक ऊर्जा में एक-एक दोहे को एक विषय बनाकर लिखने वाले शायर सागर त्रिपाठी, सागर को गागर में समाहित करने का हुनर बखूबी जानते है। उन्होंने जो देखा, जिया, भोगा वही विषय वस्तु बनाकर करीने से दोहे के निर्माण को सुसज्जित किया है।

आधुनिक जीवन शैली और संपन्नता समाज को एक खास तबके के लिए परम व चरम उपलब्धि है, लेकिन मध्य वर्ग की राह में मजबूरी, लाचारी और विसंगतियों की एक लम्बी श्रंखला चुनौती बनकर सामने आती है, जहां सामान्य व्यक्ति की रोज़मर्रा की ज़िंदगी से जूझने की, विवशताओं और विसंगतियों के ताने-बने बुनकर, सोच को शब्दों का आकार देकर मानवीय संवेदना के अनेक रूपों को मुखरित करते हैं।

अनगिनत हैं सवाल आँखों में

मौन हर बात का जवाब मगर -देवी

इस शेर में अब भी उनके सवाल जवाब तलब रहे हैं....

प्रश्न चिन्ह से हो गए अन्तरंग सम्बंध

दिशाहीन संग्राम भी कब तक लड़े 'कंबन्ध'

शब्द दर शब्द कड़ी जुड़ती जा रही है। 2008 में प्रकाशित उनकी एक अनुपम कृति "कबन्ध´मिला तो पठनीयता पुस्तक के आगामी पन्नों पर डॉ॰ अनिल मिश्रा की कही बात पर आकर रुकी जहां वे लिखते है- 'कबन्ध फुटकर रचनाओं के एक अप्रतिम रंगीन वीथिका है। विभिन्न वर्णों, सुगंधों एवं रूपराशियों का कालजयी गुलदस्ता है।

मैं केवल आँसू की बूंदें
तुम अधरों की मृदु मुस्कान

प्रयोगिक संक्षिप्त बहर की ग़ज़लों की तहत---

नर निर्बल है/ काल सबल है,,
झूठ खुलेगा/ अगर मगर से

कविता कम शब्दों में आज के यथार्थ की ओर संकेत कर रही है। सागर जी की रचनाएं प्रशांत नदी की समतल भूमि में बहती धाराओं की तरह है, जहाँ उनकी शब्दावली लहर की मानिंद मन के साहिल से टकराकर आती और जाती है।

कुल मिलाकर सागर त्रिपाठी का व्यक्तित्व बहुआयामी है, उनके व्यक्तित्व की सरलता, निश्छलता, विनम्रता एवं खारापन इनके समूरे साहित्य में व्यापक है।

तुमने हिम्मत अगर हारी है तो साहिल पे रहो

हम को तूफान में 'सागर' का मज़ा लेना है

सागर जी की दरियादिल्ली से और भी बहुत सारी उम्मीदें दामन फैलाए खड़ी है -

तू ही सागर है, तू ही किनारा

ढूँढता है तू किसका सहारा

बेपनाह शुभकामनाओं के साथ

 देवी नागरानी

[मुखपृष्ठ]

11

व्यक्तित्व के आईने में सरदार पंछी

 देवी नागरानी

कविता व्यक्तित्व का आईना है जिसमें से जीवन और परिवेश की झलकियां झांकती है। जीवन के पल पल की कोमल भावनाएं, कठोर कड़वी सच्चाइयों से रंगी हुई परछाइयां, साहित्य सरिता के रूप में संवेदनशील हृदय से विस्फोटित होकर प्रशांत नदी की तरह समतल भूमि से बहती धाराओं की तरह सरगोशियां करती हुई बहुत कुछ अपनी खामोश जुबान से कह जाती हैं.

किसी ने खूब कहा है-' ग़ज़ल एक सहराई पौधे की तरह है जो पानी की कमी के बावजूद अपना विकास जारी रखता है" इसी सच का निर्वाह और निबाह किया है कलम के सिपाही श्री सरदार पंछी जी ने जिनके साहित्य के अनंत विस्तार से

जिससे मैं अभी अभी आशना हुई हूँ. अपने तजुर्बात की बुनियाद पर उर्दू गजल में भाषा की चाशनी घोलती हुई उनकी अनेकों कृतियां मेरी नज़र से गुजरीं जिन में मेरी पसंदीदा शायरी की पुस्तकें भी शामिल रहीं- 'सूरज की शाखें और दर्द का तर्जुमाँ', इलावा इनके थीं –'गुलिस्ता अक़ीदत, बोस्ताँ अक़ीदत, टुकड़े-टुकड़े आईना, नक़्श क़दम, क़दम-क़दम तन्हाई, अधूरे-बुत, मेरी नज़र मैं आप और उजालों के हमसफर. इतने विस्तार पूरक साहित्य सागर में झांकते ही पंछी जी की का व्यक्तित्व एवं कृतित्व उभर कर आ जाता है.

उनका विस्तृत परिचय पाने की ललक से पहले पहल 1991 मैं प्रकाशित उनके ग़ज़ल संग्रह 'सूरज की शाखें' के पन्ने पलटते 'पेश लफ्ज़' पढ़ते-पढ़ते जैसे मैं उन से परिचित होती रही, जहां वे अपना तआरुफ़ कराते हुए आप बीती से जग बीती के सफर में मुझे लफ्ज़ दर लफ्ज़ अपनी सजीव गुफ्तगू से मुतासिर करते रहे. उनके लिखने का विस्तार क्षितिज के उस पार की सीमाओं को उलांघने के प्रयासों में सक्षम है. ग़ज़लियात, नज़्में और गीत, इसके अलावा हिंदी में नशरी तखलीक भी करते हैं. उनकी शख्सियत और साहित्य के सैलाब ने मेरी हैरानी की चरम सीमा को छुआ. लगा उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर कलम चलाना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन सा है. ऊंचाइयों के सामने बौनेपन का एहसास होना लाजमी है।

वो झुकी शाखें शजर को दे गई पहचान जब
झुक गई मेरी आना उस ऊंचे कद के सामने-- देवी नागरानी

उसी साहित्यक परिचर्चा पर चर्चा के दौरान सरदार पंछी उस हादसे का जिक्र कर बैठे जिसकी बदौलत उन्हें अपने मसूदों की तमाम फाइलों से हाथ धोना पड़ा, जिसका असर यहां तक हुआ कि वे कोशिशों के बावजूद भी एक साल तक न कुछ लिख पढ़ सके और ना ही किसी मुशायरे में भागीदारी कर पाए. बस उनके ही लफ्जों में 'लेकिन ख्वाबों में अपने मसूदों की तलाश जारी रही' जिसकी अनगिनत परतों में बेचैनियां रात भर करवट लेतीं. जी हां! उन मसूदों की फिक्र में जो अनजाने में रद्दी में जाने कहां से कहां पहुंची।

उनका एक शेर इसी दर्द की पीड़ा को शब्दों के पैरहन में पेश कर रहा है;
उजड़ गई ख्वाबों की जन्नत अब आंखों में ख्वाब कहां
होगी जन्नत औरों की अब अपनी जन्नत कोई नहीं

शायरी फ़क़त सोच की उपज नहीं वेदना की गहन अनुभूति भी है. ऐसे पलों में जब शब्द शिल्पी पत्थर तराशते हैं तो शिलाएं भी बोल पड़ती है-
यू तराशा है उनको शिल्पी ने
जान सी पड़ गई शिलाओं में—देवी

निराशा की परिस्थितियों में जहां आशाओं के रौशन दिये जगमगाते हैं वही अटूट विश्वास आदत बन जाता है. अपनी खुदी को खुदा के सामने झुकाते हुए उनकी बानगी का अंदाज-ए-बयां देखिए--
ऐ बहार अब तो आजा मेरे बाग में
डालियां हैं खड़ीं सर झुकाए हुए

निराशा में आशा के बीज बोते हुए उनके कपोलों को आंसुओं से सींचते हुए पंछी जी अपनी सोच से, अपनी आँखों की नमी से सहरा सहरा गुलशन बना देते हैं. दुख सुख, दोनों का चोली दामन का साथ उनके ख्वाबों की तासीर में इल्तिजा करता हुआ इस बानगी में देखिए --
जिसकी हर एक शाख़ हो पंछी का आशियां
तू सहन में आदाब का वो पौधा लगा के जा (अधूरे बुत)

मानवीय संवेदना और मानवीय यथार्थ को समेटे जहां एक तरफ सोच का सैलाब हताशा की ओर उन्मुख है वहीं दूसरी ओर आशा झलकती है. जहां उनका व्यक्तित्व और कृतित्व बहुआयामी एवं बहुमुखी दिखाई पड़ता है, वहीं उनका गद्य एवं पद्य लेखन अबाध रूप से गतिशील है. उनकी ग़ज़लें अपने परिवेश, अपनी धरती और विशेषरुप से घर-परिवार से जुड़ी हुई हैं. अपनी जमीन से जुदा होने का दर्द क्या होता है? वह पीड़ा जो तड़प बनकर दुनिया में संचार करती है वह क्या

होती है? यह उनसे पूछिये जो जड़ से जुदा होकर दरबदर हुए हैं. मैंने भी उस दौर से गुजरते हुए अपने भावों को व्यक्त करते हुए लिखा है--

वो दर बदर, मकाँ बदर, मंज़िल बदर हुआ
पता गिरा जो शाख़ से जुड़कर न जुड़ सका--देवी

देश के बंटवारे की धुंधली सी यादों के कोहरे के पार, किस-किस चीज का बंटवारा नहीं हुआ- जैसे अपने वजूद से ही जुदा होना पड़ा. कैसे एक शहर से दूसरे शहर, बदलते हुए हालातों के दौर से गुजरते हुए लुटे-लुटे से लोग सिंध से हिंद आकर बस जाने की कशमकश में परेशान उन यादों की परछाइयों को अभी तक जहन में समेटे हुए हैं. 14 साल की उम्र में सरदार पंछी भी इस मुल्क के बंटवारे के जामिन रहे.

ख़ुशबू-ए-अकीदत में पंजाब यूनिवर्सिटी के डॉ. तारीख किफ़ायत का कहना है- ' सरदार जी एक ऐसे इंसान हैं जिनकी पूरी जिंदगी एक किताब है, जिसका हर एक सुफ़ए में हवादश की तहरीरें दर्ज हैं। जीवन कुछ यूं दौर-ए-गर्दिशों में गुज़रा कि खिज़ां की हर आहट पर कोई भी शख्स टूट कर रह जाए। लेकिन इन गर्दिशों का यह तूफान, सरदार पंछी के अंदर के इंसान को छू तक नहीं पाया, अपने अटूट विश्वास के परों पर सवार सरदार पंछी अपनी कल्पना और शिल्प की सामंजस्य के माध्यम से यथार्थ का एक अलग ही शाश्वत चित्र प्रस्तुत करते हैं. उसी कल्पना की उड़ान मुलाहिज़ा हो ---

न उसने गम ही देखा, न उसने तीरगी देखी
क़लाम पाक की जिसने ज़रा भी रोशनी देखी
अक़ीदत कह रही है आज उसकी चूम लूँ आंखें
कि जिसने गुंबज़ खज़रा पे छाई चंदिनी देखी (गुलिस्ताँ अक़ीदत)

सरदार पंछी उर्दू और फारसी की शब्द संपदा पर अधिकार रखते हैं। 'उजालों के हम सफ़र में' उन्होंने उन शख्सियतों को स्थान दिया है जिन के नक्शे-क़दम पर चलते हुए इंसान बेहतर और खूबसूरत जिंदगी तक रसाई हासिल कर सकता है.

सुनिये उनके अपने शब्दों में उनकी बात- 'आइए हम सभी इन चरागों की रोशनी से अपने-अपने जहां-ओ-दिल मुनव्वर करे और इनकी तर्ज़ हयात की रोशनी में अपनी दानस्त की लौ मिलाकर दूर दूर तक उजाला करें।'
उनकी हकीक़त अक़ीदत बेबुनियाद नहीं है विश्वास की बुलंदियां देखिए इस बानगी में जो इबादत से कम नहीं है--

न हो मायूस पंछी इक ज़ियारत यूं भी होती है
उसी को देख ले जिसने मदीने की गली देखी (उजाले का हमसफर)

शब्द सरिता कविता के रूप में सुख दुख, आशा-आकांक्षा, मूल्य-मान, जीवन स्थितियों एवं विसंगतियों को उकेर कर चित्रित करती है। रचना का जन्म कोरे सिद्धांतों या वैचारिक आदर्शों से नहीं होता, परंतु कवि की वास्तविक सृजनात्मक अनुभूति से होता है. एक ऊर्जा की परिधि में जब संवेदना का संचार होता है, तब कहीं जाकर रचनाकार अंदर की दुनिया को बाहर से जोड़ता है. तब जाकर काव्य का सृजन होता है जो मानवीय अनुभूतियों और विचारों की अभिव्यक्ति का प्रमुखतम माध्यम होता है. इस शेर में तजुर्बात के गलियारे से झांकता शब्द-शिल्प का प्रमाण है:
जल रही है शम्मा परवाने चलो
लौ से घुल-मिल जाने में है ज़िंदगी

यह ज़िन्दगी मिरी इनाम या सज़ा निकले
अभी तो बंद है मुठी न जाने क्या निकले (सूरज की शाखें)

उनकी गज़लें जहां शिल्प की दृष्टि से कलात्मक बन पड़ी हैं वहीँ कथ्य की दृष्टि से भी सजीव है। ग़ज़ल चूंकि गेय काव्य है, अतः उन्होंने अपनी गजलों को गेय एवं संगीतात्मक बनाने के लिए उपयुक्त उर्दू बहरों की आधारशिला की वैज्ञानिक विधा का निर्वाह पूर्ण रुप से किया है. उन्हीं के शब्दों में उनकी बयानी सुनें:

कह रहा हूँ अपना अफसाना ग़ज़ल के रूप में
दिल के कानों से ग़ज़ल को जाने जां सुन लीजिए (टुकड़े-टुकड़े आईना)

जो शजर बे-वर्ग है, मायूस है, तन्हा भी है
हम बनाएंगे उसी पर आशियां सुन लीजिए

मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से जुड़े अनुभव, उद्योग एवं जीवन मूल्यों को सरदार पंछी ने विषय वस्तु बनाया है. ग़ज़ल सिन्फ़ अदब का आईना है जिसमें सामाजिक सरोकारों को साफ़-साफ़ देखा जा सकता है. चाहे वह मोहब्बत हो या आर्थिक एवं समसामायिक विषय या भ्रष्टाचार राजनीति व सियासतदानों की समस्या और समाधानो, उनकी ओर इशारा करते हुए सरदार पंछी के अशआर अपना कदम आगे, और आगे पुख्तगी से रखते चले जा रहे हैं।
बहुत महंगी है हर एक चीज़ माना
गरीबों का लहू सस्ता बहुत है
रोटी किसी ने भी न दी भूखे अदीब को
फिर कब्र पर जो मेला लगाया तो क्या किया (टुकड़े-टुकड़े आईना)

खरीदार और बाज़ारवाद पर कटाक्ष करते हुए उनकी बानगी देकहिये---
अब राह में ईमान के बाज़ार लगे हैं
ये शहर गरेबाँ ही खरीदार लगे हैं (दर्द का तर्जुमां)

जुर्म की तारीकियों पर रोशनी डालती हुई कलम भी कहा चुप रहती है--

शहर के सच्चे म्क्कीं को खून में नहला दिया
और क़ातिल बन गया हक़दार तेरे शहर का

जो कल तक थे कातिल, वे गंगा नहा कर
सुना है कि अब देवता हो गए हैं- (दर्द का तर्जुमां)

रचनात्मक विस्तार की गज़लें विविध पक्षों को बड़ी कुशलता से आलोकित करती हैं. जहां न पहुंचे रवि वहां पहुंचे कवि।-' एक मशहूर कहावत है। स्वार्थ लालच और सियासत के उसूलों और मानवीय मूल्यों का क्षरण हुआ है. आदमियत विलीन सी होती जा रही है. इन्साफ, इन्साफ का दुशमन हो गया है, भ्रष्टाचार फैला हुआ है, अन्याय-बेईमानी बढ़ रही है, ज़मीर बिकाऊ हो गया है. भाईचारा कहीं दिखता नहीं, रिश्तो में दरारे चौड़ी हो रही हैं. यहां आवाज उठाने वाले गूंगे और सुनने वाले बहरे हैं. न्याय -अन्याय में फर्क नहीं रहा. कोई कहे तो आखिर किस से? और यहीं पर कवि की रचनात्मक सशक्तता अपने तेवरों से कलम की जुबानी बिंब के रूप में कुछ कह जाती है---

इंसाफ कर रहे हैं वही जिनको आज तक
इंसाफ किसको कहते हैं ये भी पता न था

आप मुन्सिफ हैं तो इतनी जल्दीबाज़ी किसलिए(सूरज की शाखें)

सरदार पंछी जी का साहित्य पढ़ने से लगता है कि रचयिता अपने गहन चिंतन और काव्य के मर्म के साथ हमारे सामने खड़ा है. अच्छी कविता के भीतर कंगारू के पेट की तरह एक और कविता छुपी होती है, तिल्सिम की तरह जो अपने आप में अलग होकर भी पूरे व्यक्तित्व की परिचायक बन जाती है. अपने वजूद की तलाश में गहराइयों में कहीं गुम हो कर खुद को पाना एक सार्थक प्रयास हो जाता है. ऐसे में जब उस छोर को हम पकड़ कर पकड़ पाते हैं जो हमें अपने आप से जोड़ता है. अपने जीवन के अंधेरे के गर्भ से रोशनी चीरकर लाने का सफल प्रयास उन तमाम भटकावों को ठहरा प्रदान करता है.

प्यास जब जिससे से संभाली जाएगी
मन से ही गंगा निकाली जाएगी

जाएँगे पंछी सितारे साथ-साथ

अब जहां तक रात काली जाएगी
बेफिक्री का दामन थाम कर, लयात्मक संधि के साथ परवाज़ करता मन शायद एक समर्पण में लीन होना चाहता है. शायद वह जनता है 'आज' गुजरने पर बीते हुए कल में बदल जाएगा और आने वाला कल इस 'आज' के स्थान पर लौट आएगा. नए मोड़ आएंगे, नए मसाईल होंगे, मौसम की तरह हर दृश्य बदल जाएगा, बार-बार इतिहास की तरह सब कुछ दोहराया जाएगा अपने अंतर्मन की भावनाओं को मंथन उपरांत पंछी जी ने जिस नगीनेदारी से शब्दबद्ध किया है, उसकी कारीगरी शब्दों में देखिए --

चलिए ये कौन हवा कौन आ गया मौसम
कि ख़ार फूल बने और फूल ख़ार हुए

ये हादसे मेरे साए हैं मैं हादसा हूँ
मैं बार-बार हुआ ये भी बार-बार हुए(सूरज की शाखें)

कहा जाता है, अपने वजूद से जुड़कर एक परम सच से साक्षात्कार होने के बाद जीने मरने का अंतर ही मिट जाता है. उसके बाद और कुछ खोजने की और पाने की ललक बाकी नहीं रहती. ऐसी ही एक भावनात्मक पारदर्शिता शब्दों में देखे, पढ़ें और महसूस करें---

जब तलक रूह-ओ-बदन की तिश्नगी भरती नहीं
सागरों से बादलों की दोस्ती मरती नहीं

जो राहों के पत्थर थे क्या हो गए
शिवालों में जाकर खुदा हो गए (दर्द का तर्जुमाँ)

गागर में सागर सम्मोहित करने की इस आदायगी से मुंतज़िर हूँ और इसी संदर्भ में श्री नंदलाल पाठक जी के दो शेर पेश करती हूँ--

यूँ तो खुद हूँ बेठिकाना, मेरा दिल है खुदा का घर

मेरी आंख में समंदर मैं ज़रा सा बुलबुला हूँ.

मेरी शक्ल है तुम्हारी, ज़रा आईने में देखो
मुझे पढ़ कर खुद को पढ़ लो, मैं किताब-सा खुला हूँ

इल्म की चौखट पर इस विशाल साहित्य के सागर में गहरे उतर कर अपने आंचल में मोती समेट लाना मेरा सौभाग्य है मेरी सोच दहलीज पर दस्तक दिए बिना ही नमन कर रही है, पर इस खामोश कलम की सरगोशियां कह रही हैं--

तवील ऐसा सफ़र पंछी का है 'देवी' करे तो क्या
कलम की नोक है खामोश कोई गर लिखे तो क्या—देवी नगरानी

मैं सरदार पंछी की तहे दिल से शुक्रगुजार हूँ जो मुझे यह मौका दिया कि मैं इस साहित्य धारा से जुड़ पाऊं. उन्हीं के शब्दों में इस तवील सफ़र को आगेज़े-सफ़र मानते हुए यही कहूँगी--
बंदगी का मेरा अंदाज़ जुदा होता है
मेरा क़ाबा मेरे सजदे में छुपा होता है.
आमीन
देवी नागरानी
dnangrani@gmail.com

मुखपृष्ठ

12

आलम राज़ सरवर 'सरवर' : एक पहलू

देवी नागरानी

'सरवर' चलो, है मैकदा-ए-इश्क़ सामने
मुद्दत हुई ज़ियारत-ए-इन्सां न कर सके

'इश्क़' को 'ज़ियारत-ए-इन्सां' समझने वाले 'सरवर' साहब को जब मैं पढ़ती हूँ तो लगता है जैसे ज़िन्दगी ,कविता का आवरण ओढ़ कर, वक़्त के बंधन की सीमा तोड़कर, रक्स करती हुई उतर रही है। उनकी ग़ज़लें उनके व्यक्तित्व का आईना बनकर जीवन और परिवेश की झलकियाँ दिखाती हैं. ।जी हाँ । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से जुड़े हुए अनुभवों, अनुभूतियों एवं जीवन-मूल्यों को अपनी क़लम के दम से विषय-वस्तु बनाकर क़लमबंद करने की महारत हासिल करने वाले जनाब 'सरवर' साहब जो अपने वजूद से जुड़कर एक परम सच से साक्षात्कार होने के बाद जीने मरने का अंतर यूँ मिटा पाए हैं कि जिसके बाद कुछ और खोजने और पाने की ललक बाक़ी नहीं रह जाती। 'सरवर' के अश'आर और भावों की पारदर्शिता कुछ न कहकर भी सब कुछ कह देने की तौफ़ीक़ रखते हैं

जो कहूँ तो क्या कहूँ मैं,जो करूँ तो क्या करूँ मैं?

मैं कहाँ हूँ और क्या हूँ , मुझे ख़ुद पता नहीं है

उनकी भावनात्मक व रचनात्मक अभिव्यक्ति सारगर्भित है. उनकी सादगी और निश्च्छलता उनके

व्यक्तित्व और रचना की ही ख़ूबी नहीं अपितु उनके जीवन की , उनके सोच की एक जानी पहचानी महक है जो तन-मन की ख़ुशबू में लिपटी हुई ज़िंदगी के हर रंग से अठखेलियाँ करती है. किसी ने कहा है " ग़ज़ल एक सहराई (मरुस्थली) पौधे की तरह है जो पानी की कमी के बावजूद अपना विकास जारी रखता है." श्री आनन्द पाठक जी ने सरवर जी के परिचय भूमिका में कहा है '........सरवर' मात्र नाम ही नहीं ,एक पूरा व्यक्तित्व है ,एक संस्था है जो लगभग 50 सालों से उर्दू अदब और उर्दू ज़बान के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयासरत है......." सच है । 'सरवर' किसी परिचय के मुहताज नहीं हैं ।यह कहना कोई अतिशयोक्ति न होगी कि क़लमकार के रूप में वह भाषाई संस्कार और उर्दू अदब को आगे बढ़ाने का कार्य बड़ी शिद्दत और मेहनत से कर रहे हैं. विरासत में पाई हुई इस अदबी टक्साल को बड़ी दानिशमंदी के साथ बाँट रहे हैं. जिन संस्कारों की नींव बचपन में रखी गई हो वहां मानसिक ताने बाने की बुनियाद बननी लाज़मी है जो आगे चलकर वैश्विक दृष्टिकोण के निर्माण में अपनी पहल और प्रमुखता दर्शाती है.

शील जी अदीबों से कहते हैं कि ....

"अदब के कारीगरो आज ललकारता है देश तुम्हें

इन्क़लाब के लिये

नई जन्नत के लिये

लाल भोर के लिये

जो रेशम के कीड़े की तरह

नई सभ्यता, नये अंदाज़ को जन्म देता है"

जैसे रोशनी का जन्म अँधेरे के गर्भ से होता है, वैसे ही कलात्मक रचना का उजाला साहित्य के कलश से गीत, ग़ज़ल के रूप में हमारे सामने आता है......

लौट आती है सदाएँ तो ग़ज़ल होती है
जज़्ब वे मोती सजाएं तो ग़ज़ल होती है

ग़ज़ल कहना एक क्रिया है, एक अनुभूति है, एक कला है जिसमें रचनाकार अपने ह्रदय में उमड़ते भावों को, उद्गारों को सरल और सहज भाषा में अभिव्यक्त करता है, फिर वही भाषा, वही शैली और वही शिल्प पाठक को अत्यधिक प्रभावित करती है. रचनात्मक लेखन का वही शब्द- सौंदर्य तथा कथ्य-माधुर्य शैली कालान्तर में रचनाकार का परिचय और पहचान बन जाती है. जनाब 'सरवर' ने फ़र्माया है "..... यह शाइरी मेरे जज़्बात की तर्जुमानी और मेरे ख़यालात- ओ- तसव्वुरात को एक हद तक अक्कासी करती है.

मेरी अपनी ज़हनी- ओ- अदबी आसूदगी के लिये यही बहुत काफ़ी है......"। जी हाँ। उनके परिचय में इससे ज़ियादा कुछ कहा भी नहीं जा सकता ....

न मैं क़ील का, न मैं क़ाल का, न मैं हिज्र का, न विसाल का
मैं हूँ अक्स अपने ख़याल का, मैं फ़रेब अपनी ही जाँ का हूँ

सच है. मात्र नई मानवीय चिंता ही कविता नहीं रच सकती. उसके लिये ज़रूरी है एक उर्जस्वित भाव-बोध, समृद्ध कल्पना, रचनात्मक भाषा और एक शिल्प सौंदर्य जो रचनाकार को उसकी पहचान देता है. 'सरवर' साहब की शाइरी में गहराई, गीरआई, सिलासत, रवानी, बंदिश की चुस्ती, अल्फ़ाज़ और मुहाविरों का सही इस्तेमाल बख़ूबी पाया जाता है. शब्दों की कसावट और बुनावट यह ज़ाहिर करती है कि सरवर साहब इस टक्साल के धनी है. ग़ज़लें ताज़ा हवा के नर्म झोंके की तरह ज़ेहन को छूती हुई दिल में उतर जाती है. उनकी शायरी यक़ीनन उन का ख़ज़ाना है, लेकिन फ़साना सारे ज़माने का है. वह सारे ज़माने को इस तरह विश्वास में ले लेते हैं कि आप बीती जग बीती लगने लगती है...

हमने हाथों की लकीरों में तुम्हें ढूँढा था
वो भी था इश्क़ का क्या एक ज़माना साहिब !

सरवर जी के रचनात्मक क्षितिज का कैनवास काफी विस्तृत है. उन्होंने ने उर्दू की कई विधाओं पर ग़ज़ल ,नज़्म ,क़त्आत, रुबाई, गीत, अफ़साने पर क़लम चलाई है. अपनी कल्पनाओं में वह मनोभावों का ऐसा रंग भरते हैं कि अल्फ़ाज़ खुद-ब-खुद बोलने लगते हैं. आम इन्सान की तरह हंसते- रोते, दुख- सुख की चाशनी का ज़ायका लेते हुए जीवन पथ पर अपने मनोभावों को अपनी क़लम से शब्दों के ताने बाने में बुनकर जब वह प्रस्तुत करते है तो दिल से दिल तक एक अदृश्य पुल बन जाता है, मानवता धड़क उठती है और ग़ज़ल के माध्यम से कही हुई उनकी हर बात दिल में उतर जाती है और अपना गहन प्रभाव छोड़ जाती हैं. यही तासीर (प्रभाव)उनके अश'आर में पाई जाती है जहाँ भावनात्मक अभिव्यक्ति दिल की रौशनदान से झाँकती हुई अपने ही अक्स को दोहराती है.....

मुसीबत में इक ऐसा वक़्त भी आता है इन्सां पर
ज़रा सी छाँव भी अपना ही घर मालूम होती है

क़लम एक अद्भुत हथियार है, एक ताक़त है, एक हौसला है , जीवन संचार का एक माध्यम है जिससे रचनाकार अपनी कलात्मक सोच के ताने-बाने से शब्द-शिल्पी की तरह बुन कए , शब्दों को मूर्ति में

ढालकर और तराश कर अपनी रचना को आकार देता है. कहते हैं .अच्छी कविता के भीतर कंगारू के पेट की तरह एक और कविता छुपी होती है तिलिस्म की तरह जो अपने आप में अलग और पूरे व्यक्तित्व के साथ भी गढ़ रही होती है.।कभी मैने दो शे'र कहे थे

इक आसमां में और भी हैं आसमां कई
मुझको हक़ीक़तों से वो वाक़िफ़ करा गया

पलकें उठी तो उट्ठी ही अब तक रहीं मेरी
झोंका हवा का पर्दा क्या उसका उठा गया !

इस कला के निपुण और धनी जाने-माने शायर जनाब सरवर आलम राज़ हिंदी उर्दू ज़बान के एक सशक्त हस्ताक्षर है. उनकी शाइरी दोनों भाषाऑं की मिली- जुली गंगा-जमुनी ज़ुबान का तहज़ीबी संगम है और यही उनके व्यक्तित्व का आईना भी है.

कुरेद लेता हूँ यादों की राख मैं अक्सर
यहीं कहीं से धुआँ इश्क़ का उठा होगा !
अपनी पहचान का हर पहलू बड़ी सादगी से पेश करते हुए कहते हैं....
कैसी तलाश, किस की तमन्ना, कहाँ की दीद
ख़ुद मेरी ज़ात मेरे लिये राज़ बन गई !
कहते हैं, कवि और शब्द का अटूट बंधन होता है. कवि के बिना शब्द तो हो सकते हैं, परंतु शब्द बिना कवि नहीं हो सकता. एक हद तक यह सही भी है, पर दूसरी ओर 'कविता' केवल भाषा या शब्दों का समूह नहीं. अपितु उन शब्दों के सहारे अपने भावों को भाषा में व्यक्त करने की कला ही कविता-गीत-गज़ल है.वह किस तरह अपने हर अहसास को नफ़सत-ओ-नज़ाकत से शेर में ढाल लेते हैं, लुत्फ़ अन्दोज़ होइए
अना की किर्चियां बिखरी पड़ी थी राह-ए-आख़िर में
ये आईने तो हमने ज़िन्दगी भर ख़ूब बरते थे ..

लखनऊ, डेनमार्क, डैलस में अनेक मुशाइरों में शिरकत करते हुए ,वह अपनी ग़ज़लियात की अमिट छाप छोड़ते आए हैं. आप ने कई मुशायरों में मीर-ए-मजलिस सदारत भी की है डैलस में हुए एक मुशाइरे में जनाब बेकल उत्साही जी ने आप की शान में एक शेर नवाज़ा था,

क़ायम की धरती का पौधा, सरवर आलम राज़

डैलस की शादाब ज़मीं पर उर्दू की आवाज़

उर्दू की आवाज़ हुई बैनल अक़वानी

जिसकी ख़ुशबू से महकी तहज़ीब अवामी

तसव्वुर का परिंदा कभी आकाश की ऊंचाइयों को छूता है, तो कभी ह्रदय की गहराईयों में डूबता है. जहाँ जहाँ पर जिस जिस सच के साथ उसका साक्षात्कार होता है उसी सत्य को क़लम की ज़ुबानी कागज़ पर भावपूर्ण अर्थ के साथ पेश कर देता है.जब वो कहते हैं ..

छुपाएंगे कहाँ तक हाल-ए-इज़्तराब-ए-दिल वो लोगों से

ग़ज़ल उन की बता दे हाल- ए- सरवर आलम

इसी सच का निर्वाह और निबाह किया है सरवर जी ने, जिनकी शायरी के अनंत विस्तार से मैं मुख़ातिब हुई हूँ. उनकी व्यक्तित्व और शख्सियत पर क़लम चलाना मुश्किल ही नहीं , बहुत मुश्किल है। ऊँचाइयों के सामने अपना क़द क्या माइने रखता है ! इसे मैं बख़ूबी महसूस कर सकती हूँ। गागर में सागर समाहित करने का इल्म उन्हें ख़ूब आता है. आप के वालिद मरहूम 'राज़ चाँदपूरी' साहब अपने ज़माने के ख़ुद एक नामचीन शायर थे जो दाग़ स्कूल के जनाब 'सीमाब अकबराबादी' के शागिर्द थे. शाइरी आपको विरासत में मिली है. एक अच्छे शाइर के साथ साथ आप एक बहुत अच्छे इन्सान भी है, इस बात का अहसास उनसे बात करने पर होता है कि किस क़दर अपनत्व और मुहब्बत के साथ वे पेश आते है. यही उनकी सादगी भी है और यही उनका बड़प्पन भी. ।अपनी मेयारी कलाम और अपने ख़ास अंदाज़-ए-फ़िक्र की बदौलत 'सरवर' साहब एक मक़बूल शायर की हैसियत से हिंदोस्तान और पाकिस्तान में अपना एक ख़ास मुक़ाम बनाए हुए हैं. बक़ौल शायर

हुआ हूँ ऐसा गिरफ़्तार-ए-आरज़ू 'सरवर'

न इब्तिदा की ख़बर है न इन्तिहा की ख़बर है

उनकी अपनी साईट www.urduanjuman.com उनके व्यक्तित्व का आईना है, जहाँ "शहनाई" क़लाम सरवर में डेनमार्क के मशहूर गुलोकार परवेज़ अख़्तर जी ने उन के कलामों को अपनी आवाज़ से सजाया है. **उनकी ग़ज़लों के कई संग्रह, प्रकाशित हो चुके हैं जैसे**

शहर निगार १९९३ http://www.sarwarraz.com/books/shehrenigar.pdf

रँग गुलनार १९९९ http://www.sarwarraz.com/books/rangegulnar.pdf

और दुर्रे शहवार २००४ http://www.sarwarraz.com/books/durreshehwar.pd

ऐसी उम्दा और दिलपज़ीर अजीम शायरी के लिए जनाब 'सरवर' साहब जी मुबारक़बाद के हक़दार हैं, और मुझे उम्मीद ही नहीं यक़ीन भी है कि अदब शनास इस ग़ज़ल संग्रह का पर्दा उठते ही इसे बतौर तहजीब का संगम अपनायेंगे

और अन्त में यही कि

शिकवा बरलब न हो, उसको भी ग़नीमत समझो

लोग 'सरवर' तुम्हें भूले से भी गर याद करें

अस्तु

देवी नागरानी

[नोट : आ0 देवी नांगरानी जी सिन्धी साहित्य की एक अग्रणी लेखिका हैं .आप ने कई साहित्यिक गोष्ठियों में भाग लिया है .आप कविता ,कहानी और लेख लिखती रहती हैं। इन्टर्नेट पर आप कई साहित्यिक ग्रुप में सक्रिय हैं.आप को उर्दू से मुहब्बत है अदब-आश्ना हैं. मेरे विशेष आग्रह पर आप ने यह लेख इस संग्रह के लिए लिखा है ------आनन्द पाठक]

मुखपृष्ठ

13

"वसीयत" के रचनाकार का छोटा सा परिचय

महावीर शर्मा

देवी नागरानी

श्री महावीर शर्मा लंडन के निवासी, एक सुलझे हुए कहानीकार और गज़ल गो

शायर भी है. परदेस हो या देश एक हिंदुस्तानी ह्रदय हर द्रष्टिकोण से अपने देश की सभ्यता और वहाँ की संस्क्रुति अपने आस पास के पात्रों में ढूँढता रहता है. शायद कहीं न कहीं उसे अपना वजूद बिखरता नज़र आता है जिसका सिमटाव करने की कोशिश यह कहानी एक आईना बनकर सामने पेश आई है. साहित्य की सैर को निकलें तो उनकी साईट पर ज़रूर अपना पड़ाव बनाएं
<<http://mahavir.wordpress.com>> श्री महावीर शर्मा द्वारा लिखी गई यह कहानी "वसीयत" दिलों का हक़ीकी दस्तावेज़ है. एक चलते फिरते टाइमज़ोन में ज़िंदगी के माइनों के बदलते रंग का ज़ाइका हक़ीकत का जामा पहन कर सामने आया है.

"चलती चक्की देककर दिया कबीरा रोइ / दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोइ."

ज़िंदगी और मौत का फासला दर गुज़र करते करते, रिश्तों की बाज़ार से गुज़रना पड़ता है. यह एक आम इन्सान की ज़िंदगी का हिस्सा है जो एक कड़वे अहसास का ज़हरीला घूँट पीने के बाद ही तजुर्बा बन जाता है. आजकल ये एक आम चलन हो रहा है, शायद मशीनों के दौर में रहते रहते इन्सान की सोच भी मशीनी पुरज़ों की तरह चलते हुए अपना काम करती रहती है, बिना यह जाने, बिना यह देखे कि उन पाटों के बीच कौन आया, कौन ज़ख्मी हुआ, कौन कराह उठा. इस शोर के दौर में चीख़ का कानों तक पहुंच पाना तो नामुमकिन है, जहाँ बहरों की बस्तियाँ गूँगों की भाषा अब भी समझने के प्रयास में लगी हुई हैं. देखा और समझा जाए तो यह बात सच ही है कि कोई भी बुज़ुर्ग पैदा नहीं होता. 'आज का बालक कल का पिता' यही चलन है और रहेगा भी. बस सोच की रफ़्तार ताल मेल नहीं रख पाती और वही टाइमज़ोन का जेनिरेशन गैप बन जाता है.

खा़मुशी को ही झेलिये साहब /मुँह से कुछ भी न बोलिये साहब.

गुफ़्तगू की तरह ख़ामोशियाँ भी बोलती हैं, चीख़ती है पर बेसदा सी उनकी वो आवाज़ें घुटन बन कर दफ़्न हो जाती हैं उन दिलों की धड़कनों में, साँसें अहसास लिये धड़कती हैं. ख़ामुशी की घुटन का घेराव जहाँ घना हो जाता है, वहाँ उसे तोड़ कर एक ज़िंदा लाश को जीवन दान देना एक नेक कदम होता है. पल दो पल उस

बुढ़ापे को सहारा देना, उसके पास बैठकर उस के मन की भावनाओं को टटोलना, या उन्हें कुरेदने की बजाय सहलाना किसी तीर्थ पर जाने से ज़्यादा माइने रखता है क्योंकि "पत्थरों में ख़ुदा बसा है" कहना और उस सत्य का दर्शन करना अलग अलग दिशाओं का प्रतीक है, धड़कते दिल में रब बसता है यह एक जाना माना सच है. पर सच से आँखें चुराना, कतराकर पास से होकर गुज़र जाना कितना आसान हो गया है. हाँ जब सच का सामना होता है तो ज़्यादा कुछ नहीं बदलता, इतिहास गवाह है हर बात दोहराई जाती है, सिर्फ नाम बदलते हैं, रिश्तों के माइने बदलते हैं, हालात वही के वही रहते हैं. शब्दों से टपकती हुई पीडा़ का अहसास देखें उनके ह्रदय की गहराइयों को टटोलें, पात्रों की विवशता, एकाकीपन के सूत्र में बंधती जा कह रही है. 'एक रात जब मूसलाधार वर्षा हो रही थी। ऐथल के ऐसा तेज़ दर्द हुआ जो उस के लिए सहना कठिन था। मैंने एम्बुलैंस मंगाई और ऐथल की करहाटों व अपनी घबराहट के साथ अस्पताल पहुँच गया." एक अनंत पीड़ा को जिन सजीव शब्दों में महावीर शर्मा जी ने पिरोया है लगता है जैसे यह सिर्फ़ कहानी के पात्रों की बात नहीं चल रही है, उन्होंने खुद इस दौर को जिया है. इसी बात का जामिन है यह शेर:

ज़िंदगी को न मैं तो जी पाई /उसने ही मुझको है जिया जैसे. आगे के अंशों से चलिये जोड़ते हैं अपने आप को....

" मैं जानता था ...क्योंकि कोई सुनने वाला नहीं है, उस के अचेतन मन में पड़ी हुई पुरानी यादें चेतने पर आने के लिये जाने कब से सँघर्ष कर रही होगी, किंतु किसके पास इस बूढ़े की दास्तान सुनने के लिये समय नहीं है." (पढ़िये कहानी "वसीयत") <<http://www.sahityakunj.net/LEKHAK/M/MahavirSharma/vasiyat_kahani.htm>>) मन का हर ज़र्रा इस सत्य को किसी भी तरह नकार नहीं पाता, पर हाँ, कड़वी दवा का घूँट समझकर सिर्फ निगलने की कोशिश कर सकता है. काल चक्र तो बिना आहट, बिना किसी को सूचित किये, स्वार्थ अस्वार्थ के दायरे के बाहर, दुख सुख की परंपरा को टोड़ता हुआ आगे बढ़ता रहता है और ज़िंदगी के सफ़र में कहीं न कहीं कोई वक़्त जरूर दोहराया जाता है जहाँ तन्हाई का आलम इन्सान को घेर

लेता है, जहाँ वह मकानों की भाँय भाँय करती दीवारों से पगलों की तरह बात करना उस आदमी की बेबसी बन जाती है. दुःख सुख का अहसास वहाँ कम होता है जहाँ उसको बाँटा जाता है, वर्ना उस कोहरे से बाहर निकलना बहुत मुशकिल हो जाता है. ऐसे हालात में आंसू बेबसी का सहारा बन जाते है. आँसुओं का भार जितना ज़्यादा दर्द उतना गहरा.......!! कहानी मन को छूकर उसके मर्म से पहचान करा जाती है जब याद की वादियों से तन्हा गुज़रना पड़ता है. एक वारदात दूसरी के साथ जुड़ती हुई सामने आ जा रही है.

"उस दिन मुझे माँ और ऐथल की बड़ी याद आई। मेरी आँख भर आई! पोते का नाम जॉर्ज वारन रखा."

कहानी का बहाव मन की रवानी के साथ ऊँचाइयों से बहता हुआ मानव ह्रदय की सतह में आकर थम जाता है. लावा बनकर बह रहा है पिघलता हुआ दर्द, जिसकी पीड़ा का इज़हार कितनी सुंदरता से किया है महावीर जी ने अपने पीड़ित मन की शब्द सुरा से **"हंसते खेलते एक साल बीत गया, इतनी कशमकश भरे जीवन में अब आयु ने भी शरीर से खिलवाड़ करना शुरू कर दिया था."**

इस कहानी की तार में पिरोया गया हर अहसास निराला है, अहसासों का इज़हार बख़ूबी शब्दों में दर्शाया गया है. **"वसीयत"** का एक पहलू बड़े ही निराले मोड़ पर आ खड़ा है जहां "विलामा" नामक उस सफेद बिल्ली का ज़िक्र आया है. इन्सान और जानवर के संतुलन का संगम, क्रत्घनता और क्रत्घय्ता का एक सँगम महावीर शर्मा जी के शब्दों में...!!

" मैं उसे कहानी सुनाता और वह म्याऊँ म्याऊँ की भाषा में हर बात का उत्तर देती, मुझे ऐसा लगता जैसे मैं नन्हें जार्ज से बात कर रहा हूँ" (जार्ज इस कहानी के पात्र के रूप में उनका पोता है) मर्म का क्षितिज देखिये..! "एक दिन वह जब बाहर गई और रात को वापस नहीं लौटी तो मैं बहुत रोया, ठीक उसी तरह जैसे जॉर्ज, विलियम और जैनी को छोड़ने के बाद दिल की पीड़ा को मिटाने के लिए रोया था। मैं रात भर विलमा की राह देखता रहा। अगले दिन वह वापस आ गई। बस, यही अंतर था विलमा और विलियम में जो वापस नहीं लौटा."

अभिलाषा अंतरमन के क़लम की ज़ुबानी अश्कों की कहानी सुना रही है. अपने बच्चों की आस, प्यास बनकर रूह की ज़ुबान से टपक रही है. लपकते शोले मोम को पिघलाने के बजाय दिल को पत्थर भी बना देते हैं. दिल के नाज़ुक जज़्बे बर्फ़ की तरह सर्द भी पड़ जाते हैं, यह इस कहानी में सुंदर प्रस्तुती से दर्शाया गया है. धन राशि को धूल की तरह तोल कर लुटाया गया, जिससे न किसी के वक़्त का मोल चुकाया जा सकता है, और ना ही किसी के अरमानों को आश्रय देने की कीमत. हाँ आँका गया मूल्य तो उस एक अनकहे लफ़्ज़ का था, उस अनसुने शब्द का था जो कहीं न कहीं अंदर ही घुटकर दफ़न हो गया था, पर स्नेह के थपथपाहट से कुछ पल धड़क कर जी उठा. जीवन की सार्थकता जब सिसकती है तो दिल की आह एक वसीयत बन जाती है. बस वसीयत ही रह जाती है. वसीयत के अर्थ की विशालता शायद इन्सानी समझ समझने में असमर्थ है. जो आँखें देखती है, धन, दौलत, घर परिवार, ईंट गारे से बने महल जो न जाने किस खोखली बुनियाद पर बने है, जहाँ इन्सान नाकाम हो जाता है अपनी आने वाली अवस्था को देखने में, टटोलने में, जिसे वह आज सहला रहा है, सजा रहा है. आज जब कल का रूप धारण करेगा तब इतिहास दोहराया जायेगा. जहाँ वसीयत करने वाला लाचारी की शिला पर खड़ा है, उसी राह का पथिक हर एक को बनना है, तन्हा तन्हा उस बनवास के दौर से गुज़रना है .

अपना भविष्य उज्वल रखने वालों की चाह को सार्थक बनने और बनाने का बस एक यही साधन है कि आज का आदम कुछ पल अपनी इस मशीनी जिंदगी से निकाल कर खुद अपने परिवार के एक भी एकाकी सदस्य के मन में एक सखा भाव से झाँक कर देखे और उसे यह अहसास दिलाये कि वह अकेला नहीं है. वह तो एक भरपूर पुख़्ते परिवार का सहारा व स्थंभ है, जो शासक होते हुए बहुत कुछ दे तो सकता है पर कुछ भी ले नहीं सकता, सिवाय कुछ क्षणों के जिनकी कीमत वह वसीयत के रूप में चुका सकता है. हाँ चुका सकता है.

समीक्षक: देवी नागरानी, न्यू जर्सी, यू. एस. ए. dnangrani@gmail.com

14

शब्दों के मसीहा- विष्णु प्रभाकर

-देवी नागरानी

हिंदी के प्रख्यात साहित्यकार और पद्म विभूषण से सम्मानित विष्णु प्रभाकर (२१ जून १९१२- ११ अप्रैल २००९) उत्तरप्रदेश के मुजफ्फरनगर जिले के गांव मीरापुर में पैदा हुए, उनकी शिक्षा मीरापुर में हुई। उन्होने हिन्दी में प्रभाकर व हिन्दी भूषण की उपाधि के साथ ही संस्कृत में प्रज्ञा और अंग्रेजी में बी.ए की डिग्री प्राप्त की। विष्णु प्रभाकर पर महात्मा गाँधी के दर्शन और सिद्धांतों का गहरा असर पड़ा। इसके चलते ही उनका रुझान कांग्रेस की तरफ हुआ और स्वतंत्रता संग्राम के महासमर में उन्होंने अपनी लेखनी का भी एक उद्देश्य बना लिया, जो आजादी के लिए सतत संघर्षरत रही। पर वे किसी लेबल के मोहताज नहीं थे। खुद को हर वाद से मुक्त रखते हुए उन्होने ने लिखा है-" कुछ ने प्रगतिवादी कहा, तो कुछ ने सामंतवादी तो कुछ ने गाँधीवादी, मैं अगर वादी हूँ तो विष्णुवादी !"

देशभक्ति, राष्ट्रीयता और समाज के उत्थान के लिए निरंतर समर्पित उनकी लेखनी ने हिन्दी को कई कालजयी कृतियां दी, उनके लेखन का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह आज आठ दशकों तक निरंतर सक्रिय रहा। कथा-उपन्यास, यात्रा-संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, रूपक, फीचर, नाटक, एकांकी, समीक्षा, पत्राचार आदि गद्य की सभी संभव विधाओं के लिए ख्यात विष्णुजी ने कभी कविताएं भी लिखी होंगी , यह भी

संयोग ही रहा कि उनके लेखन की शरुआत (उनके कहे अनुसार) कविता से हुई और उनकी अंतिम रचना, जो उन्होंने अपने देहावसान से मात्र पच्चीस दिन पूर्व बिस्तर पर लेटे-लेटे अर्धचेतनावस्था में बोली, वह भी कविता के रूप में ही थी। संग्रह-"**चलता चला जाऊँगा**" से उनकी एक चुनिन्दा कविता "**आग का अर्थ"** हमारे सामने एक नये अर्थ के साथ पेश है,....

मेरे उस ओर आग है,/ मेरे इस ओर आग है,
मेरे भीतर आग है, / मेरे बाहर आग है, /इस आग का अर्थ जानते हो ?
क्या तपन, क्या दहन,/ क्या ज्योति, क्या जलन, /क्या जठराग्नि-कामाग्नि,
नहीं! नहीं!!!/ ये अर्थ हैं कोष के, कोषकारों के /जीवन की पाठशाला के नहीं,

विष्णु प्रभाकर ने अपनी लेखनी से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया. उनके रचनाकर्म की कुछ प्रेरक खासियतें हैं। वे मानते थे कि कुछ भी अंतिम या स्थायी नहीं है। वे कहते थे कि एक साहित्यकार को सिर्फ यह नहीं सोचना चाहिए कि उसे क्या लिखना है, बल्कि इस पर भी गंभीरता से विचार करना चाहिए कि क्या नहीं लिखना है। उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलाई। कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, संस्मरण, बाल साहित्य सभी विधाओं में प्रचुर साहित्य लिखने के बावजूद आवारा मसीहा उनकी पहचान का पर्याय बन गयी। बाद में अर्द्धनारीश्वर पर उन्हें बेशक साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला हो, किन्तु 'आवारा मसीहा' ने साहित्य में उनका मुकाम अलग ही रखा। पद्म भूषण, अर्धनारीश्वर उपन्यास के लिये भारतीय ज्ञानपीठ का मूर्तिदेवी सम्मान, देश विदेश में अनेकों सम्मान उनको सुसजित करते रहे।

भारतीय भाषाओं के हिन्दी के साथ समन्वय की दिशा में विष्णु प्रभाकर ने महत्वपूर्ण कार्य किये। अनुवादों के माध्यम से हिन्दी को व्यापक रूप देने में अथक मेहनत की। भारत के गैर हिन्दी भाषी प्रांतों का उन्होंने भ्रमण किया और उनकी साहित्यिक गहराई को भी परखने का प्रयास किया। गैर हिन्दी साहित्य को हिन्दी के करीब लाने के लिये कई प्रांतों की भाषाएं सीखी। गैर हिन्दी भाषियों की परंपरा और उनसे जुड़े व्यक्तित्व को अनुवाद में पूरा स्थान देकर मौलिकता के सूत्र में पिरोने में सफलता प्राप्त की। इससे भाषायी टकराव की संभावना क्षीण हुई, आपसी सद्भाव और हिन्दी के विकास के मार्ग खुले। देखा जाय तो अब विकास की विचारधारा में भारत की विभिन्न भाषाओं में रचे जा रहे साहित्य का हिन्दी में अनुवाद कर साहित्य भंडार को और अधिक समृद्ध किया जा सकता है।

उनकी कालजयी कृति **'आवारा मसीहा'** बंगाली उपन्यासकार शरतचंद्र चटर्जी की जीवनी है। जीवनी मनुष्य का जन्म से मृत्यु तक का लिखा प्रमाणित इतिहास है। यह सिर्फ़ जीवनी के तौर पर ही नहीं, बल्कि शोद्धपरकता, प्रामाणिकता और प्रवाह के कारण उपन्यास का आनंद देती है। हिन्दी साहित्य को समृद्ध करती विष्णु प्रभाकर की कालजयी कृति 'आवारा मसीहा' जीवनी साहित्य में मील का पत्थर है। आश्चर्यजनक रूप से इस सत्य से जब परिचित होते हैं कि बंगला के अमर कथा शिल्पी शरतचन्द्र को

आवारा मसीहा कहने वाले विष्णु प्रभाकर का व्यक्तित्व शरद से बिलकुल विपरीत था। शरद का व्यक्तित्व बोहेमियन था जब कि विष्णु प्रभाकर का गांधीवाद से ओतप्रोत। विष्णु प्रभाकर ने अपने पारिवारिक दायित्व का निर्वाह करते हुए एक संतुलित ज़िंदगी बसर की, जब कि शरत चन्द्र का जीवन अव्यवस्थित हालातों के तहत गुज़रा। कितनी अजीब बात है कि जीवनी में लेखक अपने से भिन्न व्यक्ति के अंतरंग और बहिरंग को पूर्णता से व्यक्त करने की चेष्टा करता है, जिसमें लेखक को अपने नायक के प्रति सुहानुभूति, श्रद्धा होती है, पर अंधविश्वास नहीं। जीवनी में लेखक स्वेच्छा से जीवन वृतांत प्रस्तुत नहीं कर सकता, और जब तक इसमें लेखक चरित्र के साथ समरस नहीं होता, उसे श्रद्धेय नहीं मानता। जीवनी लिखने का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य भी होता है, वह इस भावना से भी लिखी जाती है कि उस श्रद्धेय पुरुष की जीवनी उसे अमरत्व प्रदान करे। जीवनी का सत्य उपलब्ध सामाग्री पर निर्भर है, जहां पर बुद्धि साम्राज्ञी है।

नथूराम शर्मा प्रेम के कहने से वे शरत चन्द्र की जीवनी 'आवारा मसीहा' लिखने के लिए प्रेरित हुए जिसके लिए वे शरत को जानने के लगभग सभी स्रोतों, जगहों तक गए, बांग्ला भी सीखी और जब यह जीवनी छपी तो साहित्य में विष्णु जी की धूम मच गयी। निष्ठावान प्रतिक्रिया की शिद्दत इतनी विनम्र है जिसकी ऊंचाई के सामने सोच भी बौनी पड़ जाती है जब विष्णु प्रभाकर जी लिखते हैं- " रवीन्द्रनाथ न होते तो शरत भी न होते, और शरत है इसीलिए "आवारा मसीहा है"। विष्णु प्रभाकर की यह कालजयी कृति चमत्कारमयी भाषा शैली व शरतचंदर की अमरता के प्रति सहज ही आकर्षण पैदा करती है। इस कार्य में उनकी जीवनी की विशेषताओं का व्याख्यान किया है और कई मौलिक तथ्यों के साथ शरत जी के जीवन की अनेक घटनाओं को रोचक अंशों के साथ लिखा है जिसमें से उनके जीवन के अनेक पहलू पारदर्शी रूप में सामने आ रहे हैं।

एक विद्वान ने कहीं लिखा है, "जीवनी-लेखन कोरा इतिहास-मात्र होगा, अगर उसकी अभिव्यक्ति कलात्मक ढंग से न हो, और उसमें लिखनेवाले का व्यक्तित्व प्रतिफलित न हो। वह व्यक्ति-विशेष का तटस्थ पर खुलकर किया गया अध्ययन होता है" जीवनी लेखक के लिए ज़रूरी है कि उसके पास चरित नायक के संबंध में वैज्ञानिक ज्ञानकारी मौजूद हो, और उससे संसर्ग आवश्यक है। जीवनी का कलात्मक पक्ष जीवन के वास्तव को यथार्थ में रूपांतरित कर पाठकों के हृदय को द्रवित और रसमय करती है।

जब कोई लेखक कुछ वास्तविक घटनाओं के आधार पर श्रद्धेय व्यक्ति की जीवनी कलात्मक रूप से प्रस्तुत करता है तो वह रूप जीवनी कहलाता है, जिसमें जीवन का वृतांत उपलब्ध होता है। यह एक ऐसी व्याख्यां है जिसमें सजग और कलात्मक ढंग से क्रियाओं को संकलित करने की खोज है और व्यक्ति के जीवन में एक व्यक्तित्व का पुनसृजन होता है। कितनी अजीब बात है जीवनी में लेखक अपने से भिन्न व्यक्ति के अंतरंग और बहिरंग को पूर्णता से व्यक्त करने की चेष्टा करता है। अंगेजी के प्रसिद्ध समीक्षक जानसन ने लिखा है " वही व्यक्ति किसी कि जीवनी लिख सकता है उसके साथ खाता-पीता, उठता-बैठता और बतियाता हो।

जोनपुर के वरिष्ठ व्याख्याता श्री सुनील विक्रम सिंह ने वर्तमान साहित्य में प्रकाशित अपने आलेख “विष्णु प्रभाकर: एक अप्रतिम गध्य -शिल्पी” में कई वैज्ञानिक तत्वों के साथ समग्र सूचनाएँ देता हुए लिखा है “विष्णु प्रभाकर के समग्र साहित्य का केंद्रीय तत्व है- मनुष्य की खोज” और इसी प्रधान तत्व की तहत उन्होने एक शोधपूर्ण व खोज पूर्ण कार्य यही किया कि चौदह वर्ष तथाकथित प्रामाणिक सामाग्री शरत चंद्र के बारे में एकत्रित करते रहे और जो कुछ भी पाया वह सत्य था सत्य के सिवा कुछ भी न था।

सम्मानित चर्चित कथाकार डॉ कलानाथ मिश्र ने उनकी कृति ‘आवारा मसीहा’ को केन्द्र में रखकर विवेचना की। इसके माध्यम से उन्होंने यह बताना चाहा कि कैसे एक आवारा पीड़ित मानवता का मसीहा बन जाता है। आवारा और मसीहा दो शव्द हैं। दोनो में एक ही अंतर है। आवारा के सामने दिशा नहीं होती। जिस दिन उसे दिशा मिल जाती है, उसी दिन यह मसीहा हो जाता है। प्रमाणिकता और मौलिकता के साथ उन्होंने शरत चन्द्र के जीवन के इसी रूप में रखा।

‘आवारा मसीहा’ की भूमिका में विष्णु शर्मा ने “जीवनी क्या है?” इसको परिभाषित करते हुए लिखा है- “जीवनी है अनुभवों का श्रंखलाबद्ध कलात्मक चयन। इसमें वे ही घटनाएँ पिरोयी जाती हैं, जिनमें संवेदना की गहराई हो, भावों को आलोड़ित करने की शक्ति हो। घटनाओं का चयन लेखक किसी नीति, तर्क या दर्शन से नहीं करता वह गोताखोर की तरह जीवन सागर से डूब-डूब कर सच्ची संवेदना के मोती चुनता है।“ और एक ऐसे ही गोताखोर की तरह उन्होंने शरत चन्द्र के जीवन सागर से मोतियों को चुना तथा काल, देश, व्यक्ति और घटना की सीमाओं को तोड़कर अनुभूतियों का सौंदर्य में विक्षेपण कर परिणति दी। उनकी कृति ‘आवारा मसीहा’ विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल है।

विष्णु प्रभाकर जी का आचरण पारदर्शी एवं लोकतांत्रिक होना था, जिसमें हर विचारधारा के लोगों से वे जब भी किसी विषय पर संवाद करते, कभी ऐसा नहीं हुआ की वे अपने विचार उन पर थोपें। हां, असहमत होने पर पूरी सादगी और विनम्रता से सुझाव देते थे। वे अपनी रचनाओं और व्यवहार दोनों में जीवन के मर्म और गुत्थियों को बहुत ही सहज और सरल ढंग से खोलते थे। वे हिंदी साहित्य के सभी आंदोलनों के प्रत्यक्षदर्शी थे, और निष्ठा से अपनी कलम की धारधार नोक से सत्य परिभाषित करते रहे। कभी उनकी किसी लेखनी पर चर्चा या आलोचना होती तो विष्णु जी ने ऐसी आलोचनाओं का जबाव भी अपनी रचनाओं से ही दिया। वे आंदोलन को उद्देश्य की कसौटी पर कसते थे, न कि किसी राजनीतिक विचारधारा पर। प्रगतिशीलता के पक्ष में वे थे, साथ-साथ अपनी संस्कृति और राष्ट्रीयता उनके लिए अहम थी।

दो पीढ़ियों के मान्यताओं और मूल्यों के संघर्ष के सिलसिले में उनका कथन रौशन मुनार की तरह साफ साफ देखने को मजबूर करता है। हर दो पीढ़ियों के बीच वैचारिक संघर्ष रहता ही है, पर यह सिर्फ़ दो पीढ़ियों के व्यक्तित्व का ही संघर्ष नहीं बल्कि मान्यताओं और मूल्यों का भी संघर्ष है। जैसे पहले कहा है कि उनके समग्र साहित्य का केंद्रीय तत्व है- मनुष्यता की खोज, इस सिलसिले में कड़ी जोड़ते हुए विष्णु प्रभाकर ने एक जगह लिखा है -“सभ्यता ने मानव को समझदार नहीं बनाया, केवल नासमझी के कारण को

कुछ संशोधित कर दिया है।" उन्होंने कहा कि जाति, वर्ग और पूंजी के आधार पर समाज टूट रहा है। ऐसी स्थिति में विष्णु प्रभाकर के सिद्धांतों और रचनाओं की प्रासंगिकता और ज्यादा बढ़ गयी है।

विष्णु प्रभाकर ने अपनी वसीयत में अपने संपूर्ण अंगदान करने की इच्छा व्यक्त की थी। इसीलिए उनका अंतिम संस्कार नहीं किया गया, बल्कि उनके पार्थिव शरीर को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान को सौंप दिया गया। विष्णु प्रभाकर परिवार से उनके बेटे अतुल प्रभाकर, बेटियां अनिता प्रभाकर , अर्चना प्रभाकर हैं। उनकी पत्नी का निधन काफी पहले हो गया था।

एक साहित्यकार का जीवन उसका साहित्य ही होता है। उनके जीवन के अनछुए और अनकहे पहलुओं को उनकी रचनाओं में खुशबू की तरह पाना होता है। जैसे खुशबू फूल की पंखड़ियों में बसी रहती है, वैसे ही कवि अपनी कविता की पंक्तियों में व्याप्त होता है।

मेरा हर शेर है अख्तर मेरी ज़िंदा तस्वीर
देखने वालों ने हर लफ़्ज़ में देखा है मुझे।

सशक्त शब्दावली का प्रतिनिधित्व करके शब्द दर शब्द को अपनी लेखनी से सजीव करने वाले शब्दों के मसीहा को शत शत नमन ।

देवी नागरानी,